सम्मतिएँ.

नं. १ " दिगंबर फिरके के साहित्य में महावीर का जीवन बिलकुल खंडित है और साथ साथ ही इसी फिरके के अलग अलग ग्रंथों में कहीं कहीं कुछ कुछ विसंवादी भी है " (पंडित सुखलालजी का लेख श्वेताम्बर जैन आगरा के २३ अगष्ट सन १९३४ का अंक देखो)

नं. २ " मुलतान निवासी पं. अजित कुमारजी शास्त्री और उन के सहयोगी, धर्मोन्मत्त होकर—श्वे. म. समीक्षा लिखकर जो उक्त पंडितजी ने आन्तरिक कलह और वैमनस्य का बीजारोपण किया है न जाने वह इस प्रकारका बे-सुरा राग आलाप कर किसको अपना नंगा नाच दिखा रहे हैं " [बाबू भोलानाथजी जैन दरखशां. सम्पादक सनातन जैन-श्वेताम्बर जैन आगरा ता. २९ मार्च सन १९३४ का अंक देखो]

नं. ३ श्वेताम्बर आचार शास्त्रों में माँस भक्षण का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, तथा अस्थि, शिरा, त्वक् माँस, आदि शब्दों के प्रयोग फलों के विषय में ही आम तौर पर मिलते हैं. जबर्दस्ती श्वेताम्बर समाज के माथेपर माँस भक्षण का विधान गढदेने का क्या अर्थ है ? " [साहित्यरत्न पं दरबारीलालजी न्यायतीर्थ सम्पादक जैन जगत् " झगडालु साहित्य शीर्षक लेख देखों— श्वेताम्बर जैन आगरा ता. १२ अप्रेल सन १९३४ का अंक.]

नं. ४ " निस्सन्देह जब श्वेताम्बरों के अन्य ग्रंथों में मांस भक्षण का दुष्फल नरक के दुःखों में चित्रित है तब उन प्रकरणों में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ मांस करना सर्वथा असंगत है " [वीरपत्र अंक १८ तथा श्वे. जैन आगरा ता. १२ जुलाई सन १९३४ का. अंक देखो जिसमें वीरपत्र के सुयोग्य सम्पादक बाबू कामताप्रसादजी. और पं. परमेष्ठीदासजी का अभिप्राय उद्धृत है.]

समर्पण.

जंगम युगप्रधानाचार्य H. H. जगद्गुरु, श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के महान् रक्षक, सूरिसम्राट् श्रीमान् " विजयशांतिसूरीश्वरजी " योगीराज.

म हो द य!

तीर्थरक्षा और धर्म रक्षा के लिए आप सर्वतो भावसे प्रयत्नशील हैं. ऋषभदेव (केसरिया) तीर्थके लिये अतुल पराक्रम दर्शाकर सफलता प्राप्त की है इसके लिये श्वेताम्बर जैन समाज आपश्रीका सतत ऋणी है एवं पशु रक्षार्थ भी आपका प्रयत्न प्रचलित है इत्यादि अनेक शुभ गुणगणों से आकर्षित होकर यह " श्वेताम्बर मत समीक्षा-दिग्दर्शन " ग्रंथ आपके कर कमलोंमें समर्पित करना मै योग्य समझता हूं.

" लेखक "

जं. युगप्रधानाचार्य H. H. जगद्गुरु श्वेताम्बरसूरि
सम्राट्, योगीराज श्रीमान् विजयशांति
सूरीश्वरजी महाराज आबूप्रान्तीय
विहारी, राजपूताना.

प्रकाशक के दो शब्द.

प्रिय पाठक गण !

इस ग्रंथ की प्रस्तावना लेखक महोदयने स्वयं लिखकर ग्रंथ का महत्व समझा दिया है इसलिये उस विषय में मुझे कहने की कुछभी आवश्यकता नहीं है. किन्तु इस ग्रंथ को प्रकट करने का भार मुझे उठा लेना पडा इसका कारण बतला देना भी जरूरी है.

प्रथमतः इस ऐक्य और संगठन के युग में खण्डन–मण्डन के ग्रंथों की आवश्यकता ही नहीं है किंतु अनुचित आक्षेपों को सहन कर उदासीन रहना " अनिषिद्धं ह्यनुमतम् " की उक्त्यनुसार स्वीकार कर लेना माना जाता है और भविष्य के ऐतिहासिक साहित्य में असत्य वक्तव्य सत्य बन जाना भी संभव है एतदर्थ गंदे साहित्य का निषेध करना भी एक जरूरी बात है. यदि दिगम्बर समाज " श्वेताम्बर मत समीक्षा " का प्रकाशन रोक देती या प्रकट होजानेपर नामशेष कर देती तो आचार्यजी को उत्तर लिखने की और मुझे उसको प्रकाशित करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी परंतु एक ओरसे एक्य की दुन्दुभी बजाई जाती है और दुसरी ओर से कलहाग्नि वर्द्धक निन्द्य साहित्य प्रकट किया जाता है यही बात सज्जनों के विचार करने योग्य अवश्य है. अस्तु.

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की रक्षार्थ पं. अजित कुमारजी के आक्षेपों का उत्तर देकर खामगांव निवासी, वादीमानमर्दनकार भिषग्रत्न श्वेताम्बर जैनाचार्य श्रीमान् लालचंन्द्रजी सूरीश्वरने जो

अनुग्रह किया है उसके लिए हम आपके अनन्त आभारी है और यह ग्रंथ प्रकट करते हुये हम हर्ष प्रकट करते हैं.

श्वेताम्बर सम्प्रदाय पर आक्षेप होते हैं जिसका उत्तर जल्दी नहीं दिया जाता इस के लिये एक बात हमारे समाज को भी हमें कह देना है कि-हमारे में अनेक आचार्य, उपाध्याय, गणि, पंन्यास साधु यति श्रीपूज्य पंडित विद्वान् होते हुए भी उक्त पुस्तक प्रकट हुए आज पांच पांच वर्ष बीतचुके किसी ने उत्तर देने का साहस नहीं किया इसका प्रयोजन क्या? संख्याबंध पदवियाँ अपने नाम के साथ लगाकर फिरनेवाले, उपधान-योगवहन-बालदीक्षा आदि मे लाखों का व्यय करा देने वाले, साक्षर यह कार्य करने में क्यों उदास रहे? परंतु उन्हें ऐसे कामों के लिए फुरसत है कहाँ? वे तो अहमन्यता में मशगुल है. मुनि सम्मेलन के स्वीकृत प्रस्तावनानुसार " श्री जैन सत्य प्रकाशन समिति " स्थापित की. उसके उद्देशानुसार यह कार्य क्यों नहीं किया गया? आक्षेपोंका उत्तर देना क्या समिति का काम नही था? यदि समिति द्वारा यह कार्य बन जाता तो मुझे प्रकाशक बनने की कोई आवश्यकता नही थी. अस्तु.

यह पुस्तक पर्यूषण पर्व पर ही प्रकट होना था परंतु आचार्यजी का चातुर्मास बंबई होने से और वहाँपर आपका स्वास्थ्य बिगड जाने से प्रुफ आप देख सके नहीं, इधर प्रेस कर्मचारी महाराष्ट्र भाषा भाषी होने से दोदो बार प्रुफ देखने पर भी भाषा भेद के कारण ह्रस्व-दीर्घ-अनुस्वारादि की सामान्य अशुद्धिएँ रह गई हैं उन्हें पाठक सुधारकर पढनेकी कृपाकरें.

प्रकाशक.

प्रस्तावना.

भारत में जैन, बौद्ध और वैदिक, इस प्रकार धर्म का प्रवाह त्रिपथगा के रूप में, जब से बहने लगा तबसे आजतक इन धर्मों में से छोटे मोटे अनेक मत–मतान्तर शाखा–प्रशाखाके रूप में होगये परंतु मूल सिद्धान्त इन सब का आत्मोन्नति का होने से सापेक्ष दृष्ट्या इन सब का एकीकरण होजाता है. और आज इसी बात की आवश्यकता है कि–सभी भारतीय धर्मावलम्बियों, पंडितों, धर्माचार्यों और धर्म गुरुओं ने ऐक्य साधन में लग जाना चाहिये. यही आज का कर्तव्य है. जैन धर्म तो इस बात का पोषक है. वह भिन्न भिन्न अपेक्षा से सब धर्मों को अपना अंग-प्रत्यंग मानता है. फिर भी इस के भीतर मत-मतान्तर होगये हैं यह काल का प्रभाव है. एवं मनुष्य के स्वभाव के अनुसार यथा रुची भेद हो जाना स्वाभाविक भी है. परंतु धर्म के लिए परस्पर में कलह होना यह मनुष्य समाज के लिए घातक अवश्य है इसलिए परधर्म सहिष्णुता रखकर वर्ताव करना श्रेष्ठ है.

जैन धर्म में श्वेताम्बर और दिगंबर यह दो बडी शाखाएँ हैं इन दोनों का मूल सिद्धान्त एक होने पर भी व्यवहारिक मान्यताओं में कुछ भेद अवश्य है परंतु समाज चाहेतो वह भेद भी निकल सकता है. किन्तु समाज अभीतक इतना तैयार नहीं हुआ. और कुछ व्यक्तिएँ यह भेद रखना चाहती है इसी कारण ऐक्य साधन में बाधाएँ उपस्थित हो रही है अस्तु.

इतिहास इस बात का साक्षी है कि–प्रथम से ही पूर्वपक्ष दिगम्बर सम्प्रदाय की ओर से हुआ है. और होता है. तब उत्तर पक्ष श्वेताम्बर सम्प्रदाय को लेनाही पडता है. वर्तमान में भी दि. पं. अजितकुमारजीने "श्वेताम्बर मत समीक्षा" पुस्तक लिखकर श्वेताम्बरों के पवित्र आगमों, आचार्यों एवं भगवान् महावीरस्वामी पर मांस भक्षण का आरोप लगाकर श्वेताम्बर समाज को नीचा देखाना चाहा इसलिए माध्यस्थ भाव रखकर हमें अपनी सम्प्रदाय की रक्षा के लिए उत्तर पक्ष लेना पडा. पं. अजित कुमारजी को हमारा उत्तर स्वीकृत हो या नहो, किन्तु हमने इस निबंध में जिनकल्प और स्थविरकल्प में से किसी भी कल्प को अर्वाचीन नहीं कहा क्यों कि यह दोनों मार्ग जैन शास्त्र सम्मत है. परंतु कालदोष से जिनकल्प विच्छेद हो गया उसे शिवभूति मुनि ने फिर से चलाना चाहा किन्तु चल सका नहीं. श्वेताम्बर और दिगम्बर शास्त्र जिस प्रकार जिनकल्प मार्ग का आचार प्रतिपादन करते हैं वैसे आचार वाला मुनि लगभग दो हजार वर्ष में एक भी हुआ नहीं और केवल वस्त्र त्याग कर देने से ही जिनकल्पि हो नहीं सकता. उस के दूसरे अनेक आचार ऐसे हैं कि–जो आचरण में लाये नहीं जा सकते, जैसा कि–वन में ही रहना, सिंह व्याघ्र सर्पादि हिंस्रपशु सामने आजाय तो बचकर जाना नहीं सर्पदंश करें तो औषधोपचार करना नहीं, हाथ, पाँव, और नेत्रादि में कांटा लग जाय, कचरा पड जाय तो निकालना नहीं, उपचार करना नहीं, ऐसे आचरण वाले मुनि दो हजार वर्ष में हुआ कोई बतला सकता है! यदि कोई नहीं बतला सकता है तो फिर जिनकल्प मार्ग को विच्छेद कहने में

क्या हर्ज है ! और शिवभूति मुनि द्वारा प्रचलित मार्ग को जिनकल्प कभी नहीं कहा जा सकता. अतएव वस्त्रधारक हो या नग्न हो, दोनों की गणना स्थविर कल्प में ही हो सकती है. अतः तत्त्व दृष्टया तो कुछ भी भेद नहीं है. और वीतराग मार्ग के उपासक होने का दावा करने वाले परस्पर में राग–द्वेष बढानेका प्रयत्न करें यह कितने दुःख की बात है !

दिगम्बर सम्प्रदाय पर एक भी आक्षेप करने की हमारी इच्छा नहीं किन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय की ओर से श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय पर जो आक्षेप किये गये हैं उनका उत्तर देना योग्य समझ कर दि. भ. रत्ननन्दी कृत भद्रबाहु चरित्र की एवं अनुवादक उदयलालजी के विचारों की तथा वर्तमान पं. अजितकुमारजी, पं. वंशीधरजी के विचारों की यथार्थ समालोचना करने के हेतु हमें उक्त ग्रंथ लिखना पडा.

श्रीयुत् पं. अजितकुमारजीने आचारांग, दशवैकालिक, कल्पसूत्र और भगवती सूत्र के कुछ पाठ उध्दत कर–मद्य–मांस सेवन करने का आदेश उक्त सूत्र–करते हैं यह कह कर उक्त सूत्रों का विपरीत अर्थ कर स्वयं महावीर स्वामी पर मांस खाने का दोषारोपण किया है, उक्त आगमों को कलंकित किया है. यह अयोग्य किया है क्यों कि–जैनशास्त्र मद्य–माँस सेवन करने का आदेश करते हैं यह कहनाही कलंक मात्र है और तीर्थंकर महावीर स्वामी के भक्त कहलाने वाले अपनी लेखनी से उन्हों ने मांस खाया लिखना यह कितना वैषम्य है ! परंतु विरोध दृष्टिका यह कारण है. और

ब्र. शीतल प्रसादजी सरीखे श्वे. म. समीक्षा को पुष्ट करें यह भी कितना आश्चर्य है ! अस्तु.

दिगम्बर सम्प्रदाय में भी ऐसे अनेक सज्जन हैं जो ऐक्य को चाहते हैं और फूट के विरोधी हैं ऐसे उदार चरित महानुभावों की ओर से भी श्वे. म. समीक्षा का समाचार पत्रों में विरोध प्रकट हो चुका है इस पर से यह स्पष्ट है कि–सारा दिगम्बर समाज इस कार्य में पं. अजितकुमारजी के सहमत नहीं है. और हमारी भी यह हार्दिक भावना है कि–यह फूट मिटजाय इस में ही जैन समाज को लाभ है. हम पं. अजितकुमारजी से भी यह आशा रखते हैं कि–वे यदि अपना दृष्टिबिन्दु बदल कर,–खंडन–मंडन का कार्य छोडकर, समाज सेवामें, ऐक्य साधन के प्रयत्न में प्राचीन ग्रंथों के उद्धार करने में लगजाँय तो वे बहुत कुछ कर सकते हैं क्यों कि विद्या वाद के लिए नहीं है किन्तु ज्ञान दान के लिए है. और पंडितजी की लेखनी में रस है. आप जैनगजट के सम्पादक भी रह चुके हैं और प्रस्तुत में जैनदर्शन का सम्पादन भी आप करते हैं. हमने पंडितजी के विचारों का परामर्श करते हुए भी प्रेम और सद्भाव रखकर काम लिया है अतएव पंडितजी हमारे कथन का सरल अर्थ लेकर ऐक्य बढाने के उद्योग में लग जाँयगे तो हम उन्हें धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकेंगे.

दिगंबर सम्प्रदाय के धुरंधर विद्वान् कुन्दकुन्दाचार्य तथा स्वामी समन्तभद्र के समय में भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय का अस्तित्व था परंतु उन महात्माओं ने श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के विरुद्ध में किसी ग्रंथ में कुछ भी लिखा हुआ हमारे दृष्टि में नहीं आया इस

पर से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि--उनको श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय से विरोध नहीं था. और यह द्वेष पीछे से बढा.

इस निबंध में हमने--हमारे मन्तव्यों की पुष्टि में प्रायः महान् दिगंम्बराचार्यों के रचित ग्रंथों के पाठ उद्धृत किए हैं और हम यह मानते हैं कि उन्हों ने भी श्वेताम्बराचार्यों की भांती परधर्म सहिष्णुता रखकर ही काम लिया है परंतु पीछे से परिस्थिति वश अर्थों में खीचातान होने लगी और रागद्वेष बढता गया वह आजतक चला आता है यह अब मिटजाना अच्छा है क्यों कि केवलज्ञानी के सिवा सभी भूलके पात्र हैं. ज्ञात वा अज्ञात दशा में धर्म विरुद्ध कुछ कहा लिखा जाय तो जैनी मात्र के लिए " **खामेमि** " का पाठ प्रस्तुत है इस लिए यदि हमारी भूल सुधारने के हेतु सद्भाव से कोई कुछ लिखेगा या कहेगा तो हम उसे आनन्द के साथ स्वीकृत करने को प्रस्तुत रहेंगें और कोई द्वेष मात्र से लिखेगा तो उत्तर देने को हमारी लेखनी तैयार रहेगी हमारी इच्छा न होते हुए भी पंजाब दिल्ही आगरा कलकत्ता आदि स्थानों से अनेक महानुभावों के ऐसे पत्र आये इसलिए इस निबंधकों लिखने के लिए हमे बाध्य होना पडा.

अन्त में एक बात कह देना जरूरी है कि--सम्यक्त्व शल्योद्धार ग्रंथ के कर्ता पर हमारी पूज्य बुद्धि होने पर भी हमने इस ग्रंथ के पृष्ट ४२ पर उस ग्रंथ को "प्रमाण कोटी का नहीं है" लिखा है इसका कारण यह है कि वह खंडन-मंडन का ग्रंथ है. और ग्रंथ कर्ता ने जिस आशयसे जो बात लिखी है उस आशय को बदलकर कोई विरोधी कुछ कहे तो वहमान्य कभी नहीं हो सकती.

"लेखक."

विषय-सूची

प्रथम भाग

द्वितीय-भाग-सूची

तृतीय-भाग-सूची

वादीमानमर्द्दनकार, मिथ्रकूरत्न श्वेताम्बर जैनाचार्य
श्रीमान् बालचन्द्रजी सूरीश्वरजी महाराज
खामगांव.

" जगत्कर्तृत्व मीमांसा "

* आदि अनेक ग्रंथों के रचयिता. *

॥ अर्हम् ॥

श्वेताम्बर मत समीक्षा-दिग्दर्शन.

(ले० श्री. बालचन्द्राचार्यजी, खामगांव).

मुलतान निवासी दिगंबर सम्प्रदायके पं. अजित कुमारजी जैन शास्त्रीने " श्वेताम्बर मत समीक्षा " नामक एक पुस्तक लिखी है और वंशीधर पंडित-मालिक श्रीधर प्रेस भवानी पेठ सोला-पुर द्वारा मुद्रित होकर प्रकाशित की गयी है. उक्त पुस्तक में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय को जिनमत विरुद्ध एवं कल्पित ठहरानें के लिए यद्वातद्वा लिखकर बडे २ खूब इल्जाम लगाये गये हैं. एवं श्वेताम्बर जैनागमों को शास्त्रों को आचार्यों को एवं स्वयं महावीर भगवान को मांस खानेका आरोप लगाने के हेतु से भगवती सूत्रके अर्थका अनर्थ कर खूब विष उगला है और फिरभी प्रकाशकजी तथा कितनेक दिगम्बर बंधु, एकताके गीत गाते हुए लिखते हैं कि- " गलती को जताना भी प्रेम के बाहेर का कर्त्तव्य नहीं है " ठीक है! आजतक अनेक दिगम्बर लेखकोंने इसी प्रकार श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय पर असत्य आक्षेप करके झूठे इल्जाम लगाकर प्रेम और एकता के जो गीत गाये हैं वे वास्तव में एकता के गीत गाये हैं या दुही बढानें को गाये हैं इसके लिए पं. दरबारीलालजी

न्यायतीर्थ का " जैन जगत् " में " झगडाखु साहित्य " शीर्षक लेख पर्याप्त है उस लेखमें न्यायतीर्थजी ने पं. अजित कुमारजी के पुस्तक की समालोचना करते हुए अपना स्पष्ट मत प्रकट करदिया है कि-" ऐसे ग्रंथों से झगडा या दुई वढती है और श्वेताम्बर आगमों की आर्पता सिद्ध होती है " यह आलोचना कितनी मार्मिक हैं इसका विचार कर फिर एकताकी बात करना योग्य है. अस्तु.

हमारे एक सुहृद का तो यह अभिप्राय था कि-जानबूझकर असत्य आक्षेप करनेवाले प्रसिद्धि में आने के लिएही लडाकू साहित्य लिखते, छपवाते, और प्रकट करते करवाते हैं इसलिए ऐसे लेखों-की, ग्रंथोंकी कोई कीमत नहीं है अतः " **अतृणे पतितो वन्हिः स्वय मेवोप शाम्यति** " के न्यायानुसार उत्तर नहीं देकर दुर्लक्ष्य करनाही सच्चा उत्तर है. और इससे उसका प्रचार स्वयं बंध होजाता है. दुसरी ओरसे अनेक स्नेहियों के अनेक पत्र ऐसेभी आये हैं कि-उत्तर देनाही चाहिए. अन्त में विशेष सम्मति से यह निश्चय हुआ कि-यथार्थ उत्तर अवश्य देना और हमें कलम उठाना पडी.

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की मान्यता तो इतनी उदार है कि-वह किसी भी धर्मकी बुराइयोंकी ओर लक्ष्य न देकर-धर्ममात्रको दुःख परिहारक मानता है. इतनाही नहीं किन्तु श्वेताम्बर श्रावक वस्तुपाल तेजपालने संघ निकाला जिस में १३०० दिगंबर श्रावक श्राविकाएँ यात्रार्थ संघके साथमेंथी जिनकी सेवाभाक्ति वस्तुपाल तेज-पाल करताथा. उक्त संघाधिपतियोंने अनेक विष्णु-शिवके मंदिर,

मशजिदें, कूएँ, तालाब, बनाकर लोक हितके कार्मो में अगणित द्रव्य खर्च किया एवं परधर्म साहिष्णुताके अनेक दृष्टान्त श्वेताम्बर समाज के इतिहास के पन्नोंपर अंकित है. यदि दिगंबरी भाई इस प्रकार साहिष्णुता दर्शावें तो तीर्थोमें जो कलह हो रहा है उसका नाश होनेमें कोई शंका नरहै परंतु इसके विपरीत कलह बढानें के प्रयत्न हो रहे हैं यही दुःखकी बात है.

श्वेताम्बर मत समीक्षा में जो जो आक्षेप किये गये हैं उन आक्षेपों का संक्षेपतः उत्तर देकर संसार के सम्मुख यह बात सिद्ध कर के बतला देना है कि पं. अजिकुमारजीने येनकेन प्रकारेण श्वेताम्बरों को जैनाभास कहनेका ही ठान लिया है. यही उनकी भावना है और यही उनका ध्येय है.

उक्त पुस्तक के पृष्ट ३ से १० तक "**सच्चे देवका स्वरूप**" बतलाते हुए अठारह दोषोंकी समीक्षा की हैं वह पक्षपात पूर्ण की गई है. क्यों की श्वेताम्बरों के आगम ग्रंथों में १ दान, २ लाभ, ३ भोग, ४ उपभोग, ५ वीर्य (ये पांच अन्तराय) ६ हास्य, ७ भय, ८ रति, ९ अरति, १० शोक, ११ दुर्गच्छा, १२ काम, १३ मिथ्यात्व, १४ अज्ञान, १५ निद्रा, १६ अविरति, १७ राग और, १८ द्वेष. इस प्रकार अठारादोष माने हैं. चार घाती कर्मो के नाश होजानें पर केवली भगवान् अठरादोष रहित हो जाते हैं. अवशेष चार अघाति कर्म कायम रहते हैं परंतु वे आत्माका घात नहीं कर सकते इसी लिए उन्हें अघाति कर्म कहे जाते हैं. भूख, प्यास आदि वेदनीय नामक अघाति कर्म के सद्-

भावसे हैं तथापि कर्मवाद के विरुद्ध दिगंबर भाई इसबातको नहीं मानते और दुराग्रह पूर्वक यों कहते हैं कि–अशाता वेदनी सातामें परिणित हो जाता है यह कितना आश्चर्य है! आगे पृष्ट १० से २१ तक "केवली कवलाहार" का विषय चर्चा है परंतु वही पिष्ट पेषण किया गया है कि–जिसका श्वेताम्बरों की ओरसे अनेक बार उत्तर दिया जा चुका है तथापि हम यहांपर फिर इतना कहदेना चहाते हैं कि–आहार और निहार यह शरीरका धर्म है फिर चाहे केवली हो या सर्व साधारण प्राणी हो. क्योंकि केवली भी तो मनुष्य प्राणी अवश्य है और मनुष्य के कवलाहार का होना स्वाभाविक है "कवलाहारोणरपसु" अर्थात् मनुष्य और पशुओं के कवलाहार होता है इस प्रकार दिगंबर शास्त्रोंमें भी उल्लेख है इस लिए दिगंबर ग्रंथोंसे भी केवली को कवलाहार का होना कोई अस्वाभाविक नहीं है तथापि केवली के कवलाहार का क्यों निषेध किया गयाहै। यह हम आगे चलकर दर्शावेंगे, यहाँ हम इतना कहदेना चहाते हैं कि–यह विषय इतना विवादास्पद है कि–दोनों सम्प्रदायों की ओरसे अपने २ समर्थन में अनेक लेखकोंने अनेक पत्रेभरे हैं इस लिए दोनों पक्ष के विद्वान् एक स्थानपर बैठकर प्रेमभाव से यातो निवेडा करलें या इस विषय को केवली भगवान् के सुपुर्द करदें. यह शास्त्रीय चर्चा सर्व साधारण के उपयोगकी चीज नहीं है और न कोई इसमें समाजको लाभ है, मेरी समझसे तो यह प्रश्न केवली पर छोड देना ही अच्छाहै क्योंकि आज केवली विद्यमान होते तो तलास कर निर्णय किया जा सकता परंतु केवली

नतो विद्यमान है और न निर्णय हो सकता है. इतने परभी शास्त्रीय पंडितों को यह विषय चर्चानाही हो तो वे आनन्द के साथ एकस्थान पर बैठकर चर्चा करें परंतु सर्व साधारण में चर्चाकर परस्पर दुही फैलाना जैन समाजके लिए अवश्य घातक है.

दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रंथों में केवली का शरीर भूख-प्यास, मल-मूत्र रहित एवं सप्तधातु रहित बतलाया है. यथा—

शुद्ध स्फटिक संकाशं, तेजोमूर्तिमयं वपुः ॥
जायते क्षीण दोषस्य, सप्तधातु विवर्जितम् ॥
(श्रे. म. स. पृ. ३०)

अर्थात् १८ दोष रहित केवली भगवान का शरीर शुद्ध स्फटिकके समान तेजस्वी और सप्तधातुसे रहित हो जाता है. यह कितनी आश्चर्य जनक और असंभवित बात लिखी गई है ! कि जो तर्क के सामने क्षणभरभी नहीं ठहर सकती ! क्यों कि सप्तधातु शरीरका उपादान है और सप्तधातुमय ही शरीर है. जहां सप्तधातु नहीं वहां शरीरही नहीं हैं. देखो सुश्रुतके शारिरिक स्थानमें लिखा है कि– " धातुदोष मलमूलं हि शरीरम् " अर्थात् धातुदोष, मल मूलकही शरीर है. " धार्यन्तेति धातवः मलिनी करणान्मलाः दूषयन्तेति दोषाः " शरीरको धारण करनेसे धातु कहते हैं. मल उत्पन्न होनेसे वही मलरूपमें परिणित हो जातीहै और दूषित बन जानेपर वही दोष के रूपमें मानी जाती है यह शारिरिक विज्ञानशास्त्र का मतहै. इसलिए यहाँ यह प्रश्न होसकता है कि– केवली के शरीरमें से सप्तधातु कहां चली जाती है ? कैसे चली

जाती है ? अवशेष क्या पदार्थ रहता है ? और शुद्ध स्फटिकरूप शरीर किन उपादान कारणों से बनता है ? इन प्रश्नों का दिगंबर ग्रंथोंमें कहींपर समाधान किया गया नहीं है ? क्यों कि सप्तधातु रहित देह को मान लेना ही अंध विश्वास है. भूख प्यास और मल-मूत्र के आक्षेपों से बचाने के लिए ही ऐसा असंभव शरीर मानलिया गया है और इसी कारण कवलाहार का निषेध भी किया गयाहै और नो कर्म वर्गणा आहार का कहना भी व्यर्थ है क्यों कि नो कर्म वर्गणा कोई आहार नहीं है. और न कोई यह बात मान सकता है. एवं केवली को जमीनसे अधर चलने का कहना भी असंभव बात है. केवली क्या कोई पक्षी विशेष है जो अधर उडता रहता है ? भक्तामर को दिगंबर सम्प्रदाय भी मानता है उसमें स्पष्ट लिखा है कि—" **पादौपदानि तयत्र जिनेंद्रधत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाःपरिकल्पयन्ति ॥** " अर्थात् जहां जिनेन्द्र भगवान पग रखते हैं वहां देवता सुवर्ण कमलों की रचना करते है यहां " **धत्ते** " क्रियापद सूचित करता है कि—वे पग नीचे धरते हैं उडते नहीं इसी प्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय मानता है कि—" केवली भगवान् मुखसे बोलते नहीं उनके दसमद्वार से अव्यक्तशब्द निकलता है यह भी कितनी कल्पित और असंभव बात है क्या केवली कोई ग्रामोफोन है ? कि—जो मशिन की तरह बोलताही जाता है ? दुसरी बात यह है कि—केवली के वाणीका उपयोग ही क्या है ? और उसे फिर जिनवाणी कहनाभी व्यर्थ है ? अत: केवलीका शरीर सप्तधातु रहित, केवली अधर चलनेवाला, केवली वाणीसे बोलता नही ! इन असंभव बातोंसे तो केवलीका संसारमें अस्तित्व सिद्ध

कर देनाही नहीं बन सकता और न कभी इन बातों को संसार स्वीकार कर सकता है. और यही श्वेताम्बर–दिगम्बरों की मान्यतामें बडा मतभेद है और केवली कवलाहार के संबंधमें ३० पृष्ठ भरे हैं वे उपरोक्त युक्ति–प्रमाणों के सामने सब व्यर्थ है. और श्वेतांबर जैन सम्प्रदाय की मान्यता नैसर्गिक और सत्य ठहर जाती है।

स्त्रीमुक्ति–विचार.

आगे श्वे. म. समीक्षा पृष्ठ ३२ से ५९ तक स्त्रीमुक्ति विचार प्रकरण में जो पन्ने काले किए हैं जिन तर्कोंका उत्तर अनेकवार दिया जा चुका है तथापि हम इतना यहां अवश्य कह सकते हैं कि- ग्रंथ सब पुरुषोंके लिखे हुए होनेसे स्त्रियोंके लिए दिगंबर लेखकों ने घोर अन्याय किया है. यदि कोई ग्रंथ स्त्री लेखिका का लिखा हुआ होता तो पुरुषोंकी खबर लिये सिवा नहीं रहती इसलिये दिगम्बर मतकी स्त्रियोंने इसका अवश्य विचार करना चाहिये और इसका आन्दोलनकर अपना हक सम्पादन कर लेना चाहिए. स्त्रीमुक्ति का विचार स्त्रियोंने ही करना चाहिए यदि पुरुषों को करनाही है तो उदारबुद्धि से ही करना चाहिये. हमे स्मरण है कि–पं. अर्जुनलालजी सेठी ने "स्त्रीमोक्ष सिद्धि" और "शूद्र मोक्ष सिद्धि" नामक दो ट्रेक्ट कुछ वर्ष पहले लिखेथे जिसमें दिगंबर ग्रंथोंके आधारसे स्त्रीका मोक्ष जाना सप्रमाण सिद्ध कर दियाथा और वे ट्रेक्ट चन्द्रसेन जैन वैद्य इटावा द्वारा प्रकट हुवेथे. जिसका खंडन आजतक किसीने नहीं किया. एवं त्रिलोकसार दिगंबर ग्रंथ में भी यह गाथा है कि–

" वीस नपुंसयवेया, इत्थियेयाय हुंति चालीसा; पुंवेया अडयाला, सिद्धा इक्कंमी समयम्मि " इस गाथा का यह शब्दार्थ और स्पष्टार्थ है कि–२० नपुंसक ४० स्त्रिएँ और ४८ पुरुष इस प्रकार १०८ एक समय में सिद्ध होते हैं. मूलगाथा में द्रव्य वेद या भाव वेदका कोई उल्लेख नहीं है तथापि मूलगाथा-कारके मतकी अवगणना करते हुये भाववेद शब्द घुसेडकर यों कहते हैं कि–" श्रेणी चढते समय किसी मुनिके भाव स्त्री वेदका उदय होता है किसीके नपुंसक वेदका उदय होताहै और किसी के भावपुरुष वेदका उदय होता है. द्रव्यसे सब पुरुष धारी ही होते हैं " (श्वे. म. स. पृष्ठ ५२) परंतु मूलगाथा कारने यह बात वहां पर स्पष्ट क्यों न करदी ? कि–मैं यह भाव वेदकी अपेक्षासे कह रहा हूँ ? दुसरी बात यह है कि–पुरुष होकर भावसे स्त्री या नपुंसक होनेके विकल्पमें पडेगा तब उसको उस समय शुक्ल ध्यान कैसा ठहरेगा ? अर्थात् यह एक निरी कल्पना है. यदि भाव ही प्रधान माना जायतो यहभी मानना होगा कि स्त्री भी, भावसे पुरुष वेदी बनकर मोक्ष क्यों नहीं जा सकती ? अतः यह दलील ही व्यर्थ है. और त्रिलोक सारको सहमत नहीं है. भाववेदकी कल्पना पीछे की है. इसी प्रकार स्त्रीकों उपचारिकरीत्या श्रमणिका मान कर भी क्या लाभ है ? श्राविका की कोटीमें ही मानना योग्य है इससे चतुर्विध संघके स्थानपर त्रिविध संघ मानना होगा ? अर्थात् वस्त्र रखने की आज्ञा का उल्लंघन कर एकान्त नग्नवाद को खीचनेसे ही इतने झंझट में पडना पडा. पं. अजितकुमारजीने स्त्री निन्दा विषयक लेखमें स्त्रियोंके लिए लिखा है कि– " स्त्री को मोक्ष नहीं, स्त्री को केवल ज्ञान नहीं

होता, स्त्री पांचवे गुणस्थानक से ऊपर नहीं जा सकती, स्त्रिएँ पुरुषसे हीन होतीं हैं, सम्यग् दर्शन वाला जीव मरकर स्त्री पर्याय नहीं पाता, स्त्रियोंको सम्यक्त सहित मानना व्यर्थ है. मनुष्य स्त्रियोंकी अपेक्षा उच्च होते हैं. स्त्रियों में ज्ञानशक्ति अल्प होती है. स्त्रियोंमें संयमकी पूर्णता नहीं होती, स्त्रियोंकी शारिरीक रचना मुक्ति जानेमें बाधक है." इत्यादि स्त्रियोंके लिये खूब निन्दाजनक लिखा है. जिसका उत्तर किसी स्त्रीलेखिका कोंही देना योग्य है. श्वेताम्बर सम्प्रदायने तो स्त्रीपुरुषोंके धार्मिक अधिकार समान माने हैं. और जैसा पुरुषोंके लिए मुक्तिका मार्ग खुल्ला रक्खा है, वैसाही स्त्रियोंके लिए भी रक्खा है. एक दिगम्बर मतके सिवा अन्य किसी धर्म-मत-पंथ या सम्प्रदाय ने स्त्रियों के लिए ऐसा अन्याय का फैसला नहीं दिया.

इसी प्रकार शूद्रोंको मुक्ति नहीं मानने वालों पर भी पौराणिक मतका प्रभाव पडा और बिचारे शूद्रोंको भी मुक्तिसे वंचित रखदिया परंतु वर्ण व्यवस्था जन्म और कर्मसे भीहै "जन्मना विद्याच" (कौमुदी तद्धित प्रकरण) और "**शूद्रो ब्राह्मणतां येति ब्राह्मणो याति शूद्रताम्**" (मनु) अर्थात् कर्मसे शूद्रका ब्राह्मण और ब्राह्मणका शूद्र हो जाताहै अतःशूद्रको मोक्ष नहीं यह कहना व्यर्थ है. वर्तमानमें महात्मा गांधी शूद्रोंको ही नहीं बल्कि अतिशूद्र और अस्पर्शोंके धार्मिक अधिकारों के लिए आन्दोलन कर रहे हैं. इस लिए उनके साथ इस विषयमें शास्त्रार्थ करना योग्य हो सकता है.

श्री महावीर भगवान पर मांस भक्षणका आरोप.

(श्वे. म. समीक्षा पृष्ट ५९ से ६८ तक) अर्हंत महावीर पर अमक्ष भक्षण का दोष लगाया गया है. उसमें उपसर्ग के संबंध में तो हमारा वक्तव्य इतनाही है कि—वेदनी कर्मका सद्भाव रहने से शारिरीक दुःख होना स्वाभाविक है और भगवान् महावीरके अशाता वेदनीका जितना उदय आया था वह भोगलिया गया. दिगंबर ग्रंथों में जो यह लिखाहै कि—'अशाता वेदनी शातामें परिणमन हो जाता है" यह असत्य बात है क्योंकि उसे अशाता वेदनी कहनाही फिर व्यर्थ है एवं गोशालक का वृत्तान्त दिगंबर ग्रंथों में नहीं है इसका कारण यह हैकि—वे ग्रंथ पीछेसे लिखे गये हैं जिनमें जान बुझकर निकाल दिया गया है, आजीवक मतका उत्पादक गोशाला महावीर के समय का प्रबल वादी था बौद्ध ग्रंथों में और श्वेताम्बरोंके आर्ष ग्रंथों में अनेक स्थानोंपर गोशालक का वर्णन है एवं मराठी ज्ञान कोश में केतकरने उस-मतका अनेक पन्नों में अनेक उदाहरणोंसे वर्णन किया है.

पं. अजित कुमारजी ने इस प्रकरण में पृष्ट ६२ से ७२ तक भगवती सूत्रके कुछ पाठ उध्दृतकर भगवान् महावीर स्वामिने कुकडे का और कबूतर का मांस खाया लिखाहै यह नितान्त असत्य है. यहां पर पंडितजी के विचारों की पराकाष्टा हो जाती है. संसार के पूज्यातिपूज्य परमोपकारी महावीर तीर्थंकर पर भी मांसाहारका आरोप लगातेभी तनिक विचार नहीं किया वे श्वताम्बर सम्प्रदाय के लिए कुछ कहें या लिखें इसमें आश्चर्यही क्या है?

बात यह है कि—अशाता वेदनी कर्मके उदयसे .गोशाले के किए गये उपसर्ग के कारण भगवान् महावीर को पेचिश (लोही रसी के दस्त) होगये थे. उस समय सिंह नामका भगवान् का शिष्य गोचरी के लिए जाताथा तब महावीर ने उसको कहा कि— तूँ आज रेवती श्राविका के यहां गोचरी जाना चहाता है तो रेवतीने मेरे लिए जो बिजोरेका पाक बनाया है वह उदिष्ट (आधाकर्मी) होनेसे लाना नहीं किन्तु अपने मदमत्त नोकरों के लिए पेठापाक (भूराकोला पाक) बनाया है वह ले आना और सिंह अणगार ने भगवान की आज्ञानुसार वह लाकर दिया उस अहार को करने से भगवान् की व्याधि मिटगई. कुर्कुट शब्द बनस्पति काय विशेष फलोंमें कुष्मांड यानी पेठा या काशीफल के लिए लिखा—जाता हैं और मार्जार मदयुक्त मनुष्योंके लिए भी लिखा जाता है. और टीका कारने भी ऐसाही स्पष्ट अर्थ किया है जिस ओर दुर्लक्ष्य कर पं. अजित कुमारने मनमाना निन्द्य अर्थ कर भगवती सूत्रको कलंकित करने के हेतु से अर्थका अनर्थ करडाला है परंतु भगवती सूत्र में जहां यह वर्णन है वहां भगवान के अतिसार को नाश करनेके हेतु औषधी रूपमे वह पाक मंगवाया गया था. अतिसार की बिमारी नाश करने के लिए कुर्कट या कपोत के मांस का विधान किसी वैधक शास्त्र में नहीं है प्रत्युत्त: कुर्कुट और कपोत मांस के सेवन से अतिसार की वृद्धि होती है. और सिंह मुनि का लाया हुआ अहार करने से महावीर का अतिसार मिटगया इस से यह सिद्ध है कि—वह अतिसार नाशक औषधी होनी चाहिए और पेठा या बीजोरा ये दोनों फल अतिसार नाशक हैं इसलिए यहांपर

कुर्कुट या कपोत शब्दों के अर्थों को फल विशेष में ही मानना होगा. पं. अजित कुमार ने कुर्कुट–कपोत और मार्जार शब्दों का अर्थ करने के लिए अमरकोष के सिंहादि वर्ग के जो पाठ उध्धृत किए हैं परंतु बनस्पतियों के नाम सिंहादि वर्ग मे कैसे मिल सकते हैं ? यदि अमरकोष का वनौषधी वर्ग देखाजाय तो अनेक बनस्पतियोंके पशुप्राणीवाले नाम मिलेगें. अमरकोष के वनौषधी वर्ग में " जंबू " शब्द लिखा है जिस का अर्थ जाबून का वृक्ष भी होता है और शियाल भी होता है. " व्याध " नाम बेल के वृक्षका भी है और शिकारीका भी. " व्याघ्री " नाम सिंहनीका भी है और कंटारी भोयरीणी कामी. " मर्कटी " नाम बंदरीका भी है और कवचफली का भी." मंडूकी " नाम मेंडकी का भी है और ब्राह्मीका भी एवं मत्स्यपित्ता, क्रोष्ट्री, कपिवल्ली, काक चिंचा, श्वदंष्ट्रा, मयूरशिखा, नकुली, अजश्रृंगी, वाराही, आदि अनेक नाम पशु प्राणियों के सदश जडीबूँटियों के हैं उनकी और दुर्लक्ष्य कर सिंहादि वर्ग का हवाला देना यह जान बूज कर सत्य का खून करना है ।

जितने प्रकार के पशुपक्षी (जल–थल–और खेचर) हैं उतने ही प्रकार की जाति–वनस्पति काय में भी है. नाम भी वैसे ही हैं. और अस्थि, शिरा, त्वक्, मांस आदि शब्दों के प्रयोग भी फलों के विषय में ही आम तौर पर मिलते हैं तथापि अनभिज्ञ या दुराग्रही लेखक उन के विविध अर्थों को न समझ कर या समझने पर भी अपना पक्ष सिद्ध करने के हेतुसे किसी विशेष अर्थ को लेकर अर्थका अनर्थ

कर डालते हैं. यही कलह का मूल है. "सैन्धवमानय" इस का यह अर्थ होताहै कि-"सैंधवला !" अब यहां विचार करने की बात यह है कि-सैंधव किस चीज को कहते हैं? सैंधव घोडे का भी नाम है और निमक का भी. युद्धका प्रसंग हो वहां तो घोडा अर्थ करना होगा. और भोजन सामग्रि या वैधक का विषय होगा वहां निमक का अर्थ करना होगा. यदि इसके विपरीत युद्ध प्रसंग में निमक और भोजन या वैधक प्रसंग में घोडा अर्थ किया जाय तो अर्थ करने वाले की कितनी मूर्खता मानी जा सकती है? कहां कैसा अर्थ करना यह प्रसंग विशेष जानकर अर्थ करना चाहिए तब योग्य अर्थ माना जा सकता है.

मद्य, मांस, मधु, मत्स्य, मीन, कुर्कुट मार्जार, पारावत, और कपोत आदि शब्दोंको बनस्पति काय विशेष नामों की और दुर्लक्ष्य कर पं. अजित कुमार ने जो विपरीत अर्थ किया है इसके लिए हमें उन शब्द और अर्थो को स प्रमाण दर्शा देना है कि-जो बनस्पति काय विषय में माने गये है.

"मांस" शब्द के पर्याय आमिष, पशित, तरस, पठल, क्रव्य, पल, आदि अनेक शब्द हैं. इसका कोषो में विविध अर्थ किये गये है. जैसा आमिष-मांस, भोग्यवस्तु, उत्कोच, सुंदराकार रूपादि, लोभ, संचय, लाभ, कामगुण, भोजन, और जटामांसी नामक बनस्पति एवं "आमिषं रक्त शाकश्च, फले जंबीर आमिषं" अर्थात् लाल रंगका शाक और फलों में जंबीर फल को भी आमिष-या मांस कहते हैं. यह कर्म लोचन का मत है.

और " मांसं सौगंध विश्रुतम् " यह महाभारत १३-४८-२१ पर लिखा है. राजनिट मे मांस शब्द रोहिणी वनस्पति के अर्थ में बतलाया है जैसा कि–मांसी, मांसरोही, रसायनी, मांस दलन, और ग्रीहम वृक्ष विशेष. एवं शब्द चन्द्रिकामें आम्लवेतस, मांसफला, वार्ताकी, मांस–मासा, मांसपर्णी, मांसरोहिणी, वृन्ताक, काकोली जटामांसी, के लिए लिखा है. और फलों में भक्ष योग्य जो फल हैं उनको फलोंका मांस माना है. इसी प्रकार जैनागमों मे भी लिखा है कि—

---

१ रसायन शास्त्र ने वनस्पतियों में सप्तधातु का जहाँ वर्णन किया है वहाँ पर यह स्पष्ट बतला दिया है कि–मनुष्य और पशु प्राणियों की भांति वनस्पति काय विशेष में भी सप्त धातु है. जैसा–

१ वसा–प्रधान वनास्पतियों में तिल सरसूं, राई, मूंगफली आदि अनेक है.
२. अस्ति–(गुठली) प्रधान वनास्पतियों में बोर, फणस, सीताफल, रामफल आदि.
३. त्वक्–(चमडी छाल) प्रधान वनास्परियों में हरडे, बहेडा, आवला, चित्रक आदि.
४. मांस–(गुदा) प्रधान वनास्पतियों में पेथ, बीजोरा, खरबूज, तरवूज, बीलफल, आम्र आदि.
५. स्नायु–प्रधान वनास्पतियों में संतरा, नारंगी आदि.
६. रुधिर–रक्त प्रधान वनास्पतियों में दाडिम, लींबू, द्राक्ष, ईख, आदि.
७. मेद–प्रधान वनास्पतियों में पिपल, वड, उदुंबर, अर्क आदि.

इस प्रकार वनास्पतियों में भी सप्तधातु मय देह है. और वल्ली, वृक्ष द्विबीजक, वहु बीजक, अबीजक, पुष्पक, अपुष्पक, अनेक भेद हैं विशेष देखना हो उनने डॉ. वामन गणेश देशाई एम. बी. कृत पुस्तक को देखें.

लेखक.

" अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्गहारंभ नियत्तदोसा (उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय १४ गाथा ४१ पर) [टीका] निरामिषा निःक्रान्ता आमिषान् विषयादि पदार्थान् इति निरामिषा विषयादयः "

आगे इसी आगम के इसी अध्याय के ४६ वी गाथा में लिखा है कि---

"आमिसं सव्व भुंजिता, विहिरिस्सामो निरामिसा" [टीका] आमिषं संगंत्यक्ता विहिरिष्यामि " अर्थात् आमिष यानी सब विषयों को खाकर-नाशकर निरामिशी होके मैं विचरूँगा. यहां कोई यह अर्थ करना चाहे कि-" मै सब प्रकार के मांस खाकर-निरामिषी बनकर विचरूंगा ? " तो कभी गाथा का अर्थ नहीं लग सकता यहां पर तो आमिष शब्द संग त्याग के अर्थ में ही लगाना होगा तभी अर्थ संगती लगे गी. अतः मांस शब्द के अनेक अर्थ ऊपर दर्शाए गये हैं उन को विचार कर ही अर्थ करना योग्य हो सकता है.

मधु--शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं. शब्द कल्पद्रुम में उल्लेख है कि-मधु-क्षीर, जल, रसभेद, मधुर रस, पुष्प रस, मधु-मास, मधुदैत्य, भ्रमर, अशोक वृक्ष विशेष, मधुयष्टि, जीवंति त्रपुं, मधु कर्कटी, बीजपुर, नारंगी, मधुपर्णी, मधुकुक्कट, मातुलुंग, सुगंधा, गिरिजा, पुतिपुष्पका, अम्लम्ला, देवदूती, मधुकोश, मधुक्षीर, खर्जुरवृक्ष विशेष, मधुत्रय (सहत-सक्कर और घृत) फल, रक्तशिग

नालेर, माद्रिक फल, मधु फल, माक्षिक फल, मृदु फल, मधु पुष्प, मधु द्रवा, आदि अनेक वृक्ष-फल और पुष्पों के नाम मधु हैं. फिरभी ऐसा किस रीत्या कहा जा सकता है कि—सहदकी का नाम मधु है ? एवं. "कुर्कुट" शब्द के लिए भी कोषों में अनेक अर्थ बतलाये गये है जैसा कि—सितावर, सुपण स्वास्तिक, सु निषण्णक, सूचिपत्र, कुष्मांड, पर्णकः, कुकुटः शिखी (भाव प्रकाश वैद्यक ग्रंथ) देखिये ! कुर्कुट नाम वाली भी अनेक वनस्पतियाँ हैं फिर कौन कह सकता है कि—कुर्कुट पक्षी विशेष काही नाम है अन्यका नहीं ! इसी प्रकार "**मार्जार**" नाम वाली भी रोगापहारक अनेक वनस्पतियाँ हैं जैसाकि—मार्जार रक्तचित्रक, बिडाल पदक, खट्टाशः, कुष्मांड फल, मुद्गपर्ण, काकपर्ण, मार्जार गंधा, मार्जारकः मयूरः तथा "**दंभार्थ जपते यश्च, तप्यते यजते तथा, न परत्रार्थ मदयुक्तो मार्जारः परि कीर्तितः** (शब्द कल्पद्रुम और शब्द रत्नावली) उपरोक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि—मार्जार शब्द अनेक अर्थों में नियोजित है. इसी प्रकार "**पारावत और कपोत**" नामक अनेक वनस्पतियाँ हैं यथा— "**दाडिमामलकमातुलंगाम्रातककपित्थकरमर्दवदरकोल प्राचीनामलकतिंतिडीककोशाम्रभव्यपारावतवेत्रफललकुचाम्ल वेतसदन्तशठवृक्षसुराशुक्तसौवीरकतुषोदयधान्याम्ल प्रभृतिनि इत्येते पारावत संज्ञका** (सुश्रुत) उपरोक्त आम्ल वर्गवाली औषधियों को भी पारावत (कबूतर) या कपोत कहते हैं यह सुश्रुत नामक प्रसिद्ध वैद्यक के ग्रंथका कथन है. एवं

"राजनिघंट" में काक जंघा, दन्ती, बाकुची, केसर कंटारी, ज्योतिष्मति, इन को पारावत संज्ञक औषधी माना है एवं सौवीरांजन, ब्राह्मी, इलायची, कपोतबंका इनकों कपोत संज्ञक नामवाली लिखा है अतः यह कौन कह सकता है कि पारावत और कपोत पक्षी विशेष का ही नाम हैं अन्य का नहीं ! एवं "मत्स्य और मीन" नाम वाली अनेक बनस्पतियाँ लता विशेष–वृक्ष विशेष है–यथा–मीनाक्षी, कर्कोटी, बंध्या, सफरी, नक्रा, मीनकंटका, मत्स्या, काल रोहिणी, लज्जावती, भृंगराज, समुद्रान्ता, गिरिकर्णिका आदि [देखो शब्दार्थ चिन्तामणी) मत्स्य और मीन यह जलचर जीव विशेष के ही नाम है अन्य के नहीं हैं यह कहने की किसकी सामर्थ्य है ?

एवं अश्वगंधा, गोकर्णिका, वाराही, व्याघ्री, वृश्चिका, गजगंधा, अजश्रृंगी, महीपाक्षी, माहिष्य आदि अनेक नाम पशुपक्षियों के और वनास्पतियों के सदृश हैं इस लिए एकांत दोषी अर्थ को लेकर अनर्थ करने वाले दुराग्रही लेखक माने जाते हैं. पं. अजित कुमारजीने बनस्पति जन्य अर्थकी ओर दुर्लक्ष्य कर प्राणीजन्य अर्थको लगाकर स्वयं महावीर स्वामी को मांसभक्षी लिखकर जैनत्वका जो परिचय दिया है यह अवर्णनीय है. अस्तु !

गर्भापहार.

श्वे. म. समीक्षा पृष्ठ ६८ से ७६ तक महावीर स्वामी के गर्भापहार की समीक्षा भी अविचार पूर्वक की गई है. आज कल के कुशल डॉक्टर भयंकरसे भयंकर काट बाढ करते हैं. कलेजा,

किरणी, (गुर्दा) और गर्भस्थ बालक को असर से बचा लेते हैं तब देवकृत कार्य में ऐसा होना कोई असंभव नहीं. इस विषय का परामर्श डाक्टरों से लेना चाहिए. हमने हमारे अनेक डॉक्टर मित्रों से पूछा तो उन्होंने कहा कि जरूर होतो आज भी हरिणंगमेषी देवका कार्य करने वाले अनेक कुशल डाक्टर विद्यमान है. दुसरी बात यह है कि–दिगंबर ग्रंथ गर्भकल्याणक मानते हैं किन्तु श्वेताम्बर चवन कल्याणक मानते हैं इसलिये श्वे. ग्रंथों में गर्भ कल्याणक का वर्णन हो कहाँसे ! इसका पंडित जी ने विचार करना चाहिए. एवं भगवान् महावीर के दो माता और दो पिता का होनार आगमों में स्पष्ट लिखा है. पंडित जी नें ब्राह्मण कुल कों नीच कुल लिखा है मगर श्वेताम्बर ग्रंथों में ब्राह्मण कुल को नीच कुल कहीं पर भी नहीं लिखा किन्तु भिक्षुक कुल लिखा है. और शला का पुरुष किस २ कुल में जन्म नहीं ले ते इस की सूची दी है वहां स्पष्ट उल्लेख है कि–" **भिक्खायर कुलेसु वा महाण कुलेसु** " अर्थात् भिक्षुक कुल में तथा ब्राह्मण कुल में शलाका पुरुस जन्म नहीं ले सकते हैं क्योंकि अध्यात्म ज्ञान का वारसा हक क्षत्रिय जाती कोहि है. ब्राह्मणों कों नहीं है यह बात छांन्दोग्य उपनिषद् में भी स्पष्ट लिखी हुई है. गणधर शलाका पुरुषों की गणना में नहीं है इस लिए ब्राह्मण कुल में गणधर जन्म ले सकते हैं.

गृहलिंग–अन्यलिंग मुक्ति

श्वे. म. समीक्षा पृष्ठ ७६ से ८० तक पंडीत जी ने गृह लिंग मुक्ति की समीक्षा की है किन्तु यहां पर भी एकान्त पक्षपात

पूर्ण और अविचार पूर्वक ही विचार किया गया है. श्वेताम्बरों के महामान्य आगम ग्रंथों में गृहलिंग और अन्यलिंग में मुक्ति होना इस लिए माना गया है कि–लिंग (वेस) मुक्ति का कारण होही नहीं सकता. मुक्तिका कारण आत्मा की प्रबल शक्ति है. जड पदार्थ उसे फिर रोक सकते नहीं इस लिए १५ प्रकार सिद्धों के श्वेताम्बर शास्त्रों ने उदारता पूर्वक बतलाये हैं. इस प्रकरण में अजित कुमार जी ने लिखा है कि–" यह बात श्वेताम्बर मत के सिवा अन्य किसी मत को स्वीकार नहीं " हम यहां कह सकते हैं कि–एकान्त वादी धर्मों को यह बात स्वीकार हो भी नहीं सकती और श्वेताम्बर जैन दर्शन अनेकान्त पक्ष का समर्थन करने-वाला होने से परधर्म सहिष्णुता पूर्वक अनिन्द्यमार्ग को बतलाने वाला है

लिंग (वेस) मुक्तिका कारण नहीं, यह बात समन्तभद्र और पूज्यपाद के ग्रंथों मे भी दृष्टिगत होती है यह हम संघभेद समीक्षा प्रकरण में सप्रमाण दर्शा चुके हैं एवं संग्रहणी में जो लिखा है वह जैनेतर मतकी श्रद्धा में रह कर तापस ब्रह्मलोक पर्यन्त जाने की अपेक्षा से लिखा है किन्तु वही तापस उसी लिंग में रहकर सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र की आराधना कर मोक्ष तक भी जा सकता है. एवं गृहलिंग के लिए भी समझना चाहिए. देशविरति क्रिया की अपेक्षा श्रावक अच्युत देवलोक तक जा सकता है परंतु उस क्रियासे आगे शुभ परिणामों की धाराएँ वहने लग जांय और श्रेणी चढते २ बार वें तेरहवें गुणस्थानक तक पहूंच कर मोक्ष तक भी श्रावक जा

सकता है. पूर्ण वीतराग होना परिणामों की अपेक्षा से है लिंगकी अपेक्षा से नहीं है. बाह्य त्याग हो या नहो अन्तरंग में त्याग हो जाना चाहिये तभी सच्चा वैराग्य कहा जा सकता है.

श्री महावीर स्वामी के रागभाव.

श्वे. म. समीक्षा पृष्ट ९३ से ९५ तक अर्हन्त अवस्थामें श्री महावीरस्वामी के रागभाव नामक प्रकरण में पंडितजी लिखते हैं कि—" हे गोतम ! यह संबोधन राग भाव का सूचक है क्योंकि केवली व्यक्ति विशेष को संबोधन क्यों करें " उत्तर में मालूम हो कि प्रश्न कर्ता को उद्देश कर उत्तर देते हुए संबोधन कर के कहना राग भाव का कारण नहीं है. दिगंबर सम्प्रदाय तो केवली का मुख से बोलना तक नहीं मानती और मस्तिष्क से अव्यक्त ध्वनी निकलना मानती है फिर भी भद्रबाहु चरित्र में रत्ननन्दी दिगंबर भट्टारक लिखता है कि—" भद्रबाहु भवंवृत्तं श्रेणिकाऽतो निशम्यताम् " अर्थात् हे श्रेणिक ! अब आगे तुम भद्रबाहु मुनिका चरित्र सुनो " (भ. च. पृष्ट ५) इस प्रकार श्रेणिक को संबोधन कर के महावीर अर्हन्त ने कहा. यह आपकी दृष्टि से सिद्धान्त विरुद्ध कथन दिगंबर ग्रंथों में भी है वह आपको स्वीकृत कैसे रहा ! इस ग्रंथ को बहिष्कृत क्यों नहीं किया ? एवं जिस रात्री को भगवान् महावीर मोक्ष गये उस रात्री के प्रभात को इन्द्रभूति प्रथम गणधर के राग भाव का नाश हुआ श्वे. ग्रंथों में लिखा है परंतु पंडित जी उस दिन महावीर का राग नाश हुआ

कहते हैं यह नितान्त मिथ्या है. एवं केवलावस्था २० वर्ष नहीं किन्तु ३० वर्ष माना है एवं देवशर्म्मा के यहां इन्द्रभूति को भोजना लाभ का कारण था. शिष्य को आज्ञा करना गुरु का धर्म है. इस कथा का पंडित जी ने जो अर्थ का अनर्थ कर मिथ्या आरोप किया है यह भ्रमात्मक है.

वीतराग प्रतिमा वीतरागी हो या सरागी ?

अर्हत् प्रतिमा के लंगोट शीर्षक समीक्षा पृष्ट ९६ से १०४ तक असमंजस लिखा है यह वर्तमान समस्या है यही वाद और कलह का मूल हो पडा है. यह वाद माध्यस्थ सभा में चर्चा ने योग्य है तथापि हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि–भक्ति करना भक्त की इच्छपर निर्भर है. प्रतिमा पूजन तथा वस्त्राभूषणादि धारण कराना पंचकल्याणक की दृष्टि से किया जाता है. श्वेताम्बर शास्त्रों ने वस्त्राभरण पूजा का रहस्य स्पष्ट कर दिया है. दिगंबर समाज भी प्रतिष्ठादि उत्सवों में रथ यात्रादि में अर्हन्त प्रतिमा को चांदी के रथ में और हाथी पर बैठाते हैं उस समय वीतराग भाव माना जाता है या सराग? वीतराग को हाथी पर या चांदी के रथ पर बैठनें का क्या प्रयोजन? एवं दिगंबर मंदिरों में अर्हन्त प्रतिमा को सोने चांदी के सिंहासन पर बिराजमान करते हैं छत्र बनाते चढाते हैं इससे वीतराग भावकी वृद्धी होती है या सराग की? मुकुट कुंडलादि आभूषण चढाओ या छत्रसिंहासन से शोभा बढाओ दोनों बात एकही है. "देवागमनभोयान

चामरादि विभूतयः " लिखकर समन्तभद्रादि दिगंबर ग्रंथकारों ने भी विभूतियों का होना स्वीकार किया है और अर्हन्त देवकृत अतिशयों से अलंकृत होने पर भी उनका वीतरागपना कायम रहता या लिखा है तो फिर वस्त्राभूषण परिधान कराने से अर्हन्त प्रतिमाका वीतराग पना कहां जा सकता है ? अर्थात् वीतरागता जिन मुद्रा में है वह वस्त्राभूषण से नहीं जा, सकती.

जैन मुनिका स्वरूप कैसा है ?

श्वे. म. समीक्षा पृष्ट १०४ से १४० तक जैन मुनिका स्वरूप कैसा होना चाहिये इस विषय में पंडितजी ने खूब तूल तवालत देकर लिखा है जिसका उत्तर संघ भेद समीक्षा प्रकरण में हम लिख चुके है पाठक उस प्रकरण मे देख सकते हैं वहांपर वस्त्र पात्रकी उपयोगिता और आवश्यकता बतला चुके हैं तथापि यहांपर संक्षेपतः इतना कह देते हैं कि—मुनि का एकान्त नग्न स्वरूप मानना अनेकान्त पक्ष से दोष युक्त है और वस्त्र—पात्रादि धर्मोपकरण रखना जैन शास्त्र सम्मत है. उर्णा का वस्त्र रखना भी बुरा नहीं क्यों कि मोरकी पीछी को भी तो कपडे से या रस्सी से बाँधकर ही रक्खी जाती है और मोर पंख मे ताम्र धातु भी है एवं कमंडलु भी कितनेक धातुपात्र का रखते हैं यह भी परीग्रह ही मानना होगा ? एतदर्थ बाह्य लिंग, (वेस) परिग्रही अपरिग्रही का निर्णय नहीं दे सकता. और नग्न रहने से अपरिग्रही नहीं माना जा सकता. अन्तरंग में जिस के ममत्व (मूर्छा) का नाश हो वही अपरिग्रही माना जा सकता है.

वर्षा कल्प.

श्वे म. समीक्षा पृष्ट १४१ पर "क्या साधु छाता भी रक्खें ! इस प्रश्न की समीक्षा पंडित जी ने की है. परंतु शास्त्रों की परिभाषा पंडित जी समझे नहीं क्योंकि भिक्षार्थ भ्रमण करते या मलोत्सर्ग के लिए जाते आते वर्षा काल में सचित्त जल से वचने के लिए ऊनकी कंबल साथ में रखनें की शास्त्र की आज्ञा है. इसी का नाम वर्षा कल्प-आच्छादनवस्त्र-या छाता है. जौर से वर्षात गिरती हो उस समय उपाश्रय से बाहेर निकलने की आज्ञा नहीं हैं किन्तु उपाश्रय से निकल जाने पर अकस्मात् पानी बरस ने लग जाँय तो मार्ग में सचित्त से बने के एवं उपाश्रयादि निर्दिष्ट स्थानतक पहूंच ने के लिये उस आच्छादन वस्त्र का उपयोग ले लिया जा सकता है. अतः अच्छादन वस्त्र-या-छाता रखना योग्य है. और आज भी श्वेताम्बर जैन साधु आच्छादन वस्त्र रखते हैं. परंतु जिस देश में बरफ वहोत पडता हो ऐसे स्थानों में यदि दिगंबरी साधु विहार करना चाहे तो किस रीत्या कर सकते है ? इस का भी पंडित जी निर्णय दे दें तो बहुत अच्छा हो. सुनागया है कि वर्तमान दिगंबर मुनियों के लिए सीत काल में श्रावकों की ओर से एक छत्राकार वस्त्र बनाया जाता हे और रात्री को मुनियों पर अधर रखदिया जाता है क्या यह वात सत्य है ? इसका खुलासा पंडित जी देंगे तो बहुत ही अच्छा होगा.

चर्म पंचक

श्वे. म. स. पृष्ट १४२ से १४७ तक प्रवचन सारोद्धार

प्रकरण ग्रंथ का अवतरण दे कर, चर्म की पुस्तक या जूता या बिछाने का चर्म आदि की जो आलोचना की है यहां भी शास्त्रकार के आशय को बिना समझे ही की गई है क्योंकि अकेला मुनि हो, मार्ग भूल गया हो, वनवासीहो उस के लिए अपवाद समय में चर्म पंचक का उपयोग करना कहा है. वर्षा काल में चर्म लपेटलेने से पुस्तक की रक्षा जितनी अच्छी होती है उतनी अन्य किसी चीज से नहीं हो सकती एवं आज भी उपयोगी पुस्तकों के चमडे की जिल्द बधवाई जाती है. एवं मारवाड प्रभृति देशों में उँट के चमडे के कूडों मे घृत भर कर रक्खा जाता है जिस का उपयोग जैन जैनेतर सभी बराबर करते हैं. एवं केसर, *कस्तूरी, अम्बर आदि प्राणिज वस्तुओं का उपयोग पवित्र मान* कर देव मंदिरों तक में होता है इस लिए कमाया हुआ चमडा अशुद्ध नहीं और न किसी प्रकार के जंतु की उत्पत्ति हो सकती है. यद्यपि वर्तमान के किसी भी जैन सम्प्रदाय के साधुओं में चर्म पंचक रखने की प्रवृत्ति नहीं है किन्तु अपवाद में उपयोग किया जाय तो अहिंसा महाव्रत में दूषण आने का कोई कारण नहीं है क्योंकि " जिनैर्नानुमतंकिंचिन्निषिद्धं नान्यसर्वथा "

साधु आहार पान कितने वार करें ?

श्वे. म. स. पृष्ट १४७ से १५७ तक आलोचना कीगई है वह भी अविचार से की गई है. सर्व साधारण नियम तो यह जरूर है कि—जैन मुनिने सदा एकवार भोजन करना चाहिए परंतु एकांतर उपवासवाला तपधी जैन मुनि दोवार भी कर सकता है.

एवं तीन तीन उपवास के अन्तर पारणा करने वाला तपस्वी तीन वार भी भोजन करसकता है और तीन के उपरांत अधिक उपवास करने वाला पारणे के दिन अनेकवार इच्छानुसार दिनभरमे भोजन करसकता है क्योंकि आगे फिर तपश्चर्या करना है इस लिए हेतु-पुरस्सर तपस्वी मुनि कों छूट दीगई हैं क्योंकि– अधिक उपवास करने वाले तपस्वी मुनि से एकदम खाया भी जासकता नहीं और एकदम खानेकी वैद्यक शास्त्र भी मना करता है इस लिये तपस्वी कों अनेक वार भोजन करने की आज्ञा दीगई हैं. तपस्वी के लिए भी एकवार भोजन करना जो मानते हों वे व्यवहार शून्य और अनेकान्त वाद के विरूद्ध है

साधु क्या कभी मांस भक्षण भी करें ?

श्वे. म. समीक्षा पृष्ट १५१ से १५९ तक. मांस मद्य सेवन का दोप लगाकर आचारांग और दसवै कालिक सूत्र के पाठों का अर्थ का अनर्थ किया है तथा कल्पसूत्र कों कलंकित बनाया है इस की परिभाषा पंडितजी समझेही नहीं. और निषेध वाक्य कों विधिवाक्य मान कर कुछ का कुछ लिख दिया है.

बात यह है कि–कल्पसूत्र की साधु समाचारी प्रकरण में ६ वीं समाचारी में विकृति का वर्णन है. विकृति १० हैं. जिन के सेवन से मनुष्य को विकार उत्पन्न हो उस का नाम विकृति है जैसे सामान्य विकृति ६ हैं–दुध–दही, मीठाई, गुड घृत और तैल. ये छे विकृति भी जैन मुनि कों विधिवाद से सेवन करना वर्ज्य है.

दृष्टि से पंडित जी अपना क्या मत प्रकट करते हैं? यह हमें देखना है.

महावीर स्वामि के समय में किसी भी जाति में मांस मदिरादि अभक्ष सेवन का जातीय निषेध नहीं था और मुनी होनेवाले उन्हीं गृहस्थ जातियों में से ही होतेथे और उन्हीं जातियों में मुनिवर्ग गोचरी जाता था तो क्या मुनियों को भक्ष्याभक्ष्य के सम्पर्क वाले गृहस्थियों के पात्रोंका आहार लेने में नहीं आता था? एवं अपवाद दशामे रोगादि कारण वश, भूलसे या बलात् अभक्ष्य वस्तु गोचरी में लेलिया जाय तो क्या उसे चारित्र हीन माना जा सकता है? अर्थात् कारण वश अपवाद विधिभी हेय नहीं है। समन्तभद्रस्वामी सरीखे दिगंबर सम्प्रदाय के समर्थ आचार्य ने रोगवश कितने वेस परिवर्तन किए! कहाँ कहाँ कैसे भोजन किए? यह अपवाद दिगंबर ग्रंथों में अंकित है. अतएव कल्पसूत्र में जो दस (१०) प्रकार की विकृति का वर्णन है वह योग्य है और मांस मधु मद्यादि शब्द किन किन पदार्थों के अर्थो में माने गये हैं यह हम पृष्ठ (१८) पर बतला चुके हैं इसलिए एकान्त दूषित अर्थ करना घोर अन्याय है।

आचारांग और दशवैकालिक.

भगवती सूत्र और कल्पसूत्र की तरह आचारांग और दशवैकालिक सूत्र की भी पंडितजी ने खूबही खबर ले डाली है. और जहाँ आचारांग के दशमाध्यायन में ५६५ में सूत्र पर जो यह

क्योंकि विकृति सेवन से काम विकार जाग्रत होता है तथापि वर्तमान के जैन साधु (क्या श्वेताम्बर और दिगम्बर) सभी सामान्य विकृति सेवन करते हैं तो क्या यह अपवाद नहीं है! लूखा-सूखा सदा खाने की जहाँ आज्ञा है वहाँ सामान्य विकृति का उपयोग किया जाता है और श्रावक वर्ग आग्रह पूर्वक देता है क्या यह अपवाद नहीं है? एवं महाविकृति को अत्यन्तात्यन्त अपवाद के सिवा कभी नहीं लेना चाहिए और वह भी बाह्य परिभोग के लिए अन्यथा नहीं.

निसर्ग और अपवाद हरसमय वस्तु मात्र में हुआ करता है. जिस विधि का अपवाद नहीं वह विधि नहीं. मान लो किसी मुनि को किसी कारणवश अपवाद सेवन करना पड़ा, या बोलते समय मक्षि का या मच्छर मुख में घुस कर मर गया, या जलपात्र (कमंडलु) में कीड़िएँ भर कर, मर गईं और आलोचन-प्रमार्जन करने पर भी कदाचित् अज्ञात दशा में पानी के साथ पेट में चली गईं तो क्या मुनि जीवन समाप्त हो जाता है! क्या यह अपवाद नहीं है! अतः विधि के साथ अपवाद तो होताही है. जिन शास्त्रों में विधि-अपवाद के वाक्य नहीं वे धर्म शास्त्र नहीं इस लिए अपवाद के समय अपवाद की प्राधान्यता मान लेना, योग्य है दिगम्बर और श्वेताम्बर समाज के अनेक श्रावक विलायत जा कर, डिग्रियाँ लेकर, धन कमाकर, आये हैं और जाते आते हैं और मांस भक्षियों के हाथ का पका (रांधा) हुआ शुद्ध और सात्विक खाकाहार करते हैं उन के लिए दिगम्बर-सम्प्रदाय व शास्त्र की

ृष्टि से पंडित जी अपना क्या मत प्रकट करते हैं? यह हमें देखना है.

महावीर स्वामि के समय में किसी भी जाति में मांस मदिरादि अभक्ष सेवन का जातीय निषेध नहीं था और मुनी होनेवाले उन्हीं गृहस्थ जातियों में से ही होतेथे और उन्हीं जातियों में मुनिवर्ग गोचरी जाता था तो क्या मुनियों को भक्ष्याभक्ष्य के सम्पर्क वाले गृहस्थियों के पात्रोंका आहार लेने में नहीं आता था? एवं अपवाद दशामे रोगादि कारण वश, भूलसे या बलात् अभक्ष्य वस्तु गोचरी में लेलिया जाय तो क्या उसे चारित्र हीन माना जा सकता है? अर्थात् कारण वश अपवाद विधिभी हेय नहीं है। समन्तभद्रस्वामी सरीखे दिगंबर सम्प्रदाय के समर्थ आचार्य ने रोगवश कितने वेस परिवर्तन किए! कहाँ कहाँ कैसे भोजन किए? यह अपवाद दिगंबर ग्रंथों में अंकित है. अतएव कल्पसूत्र में जो दस (१०) प्रकार की विकृति का वर्णन है वह योग्य है और मांस मधु मद्यादि शब्द किन किन पदार्थों के अर्थों में माने गये हैं यह हम पृष्ठ (१४) पर बतला चुके हैं इसलिए एकान्त दूषित अर्थ करना घोर अन्याय है।

आचारांग और दशवैकालिक.

भगवती सूत्र और कल्पसूत्र की तरह आचारांग और दशवैकालिक सूत्र की भी पंडितजी ने खूबही खबर ले डाली है. और जहाँ आचारांग के दशमाध्यायन में ५६५ में सूत्र पर जो -

लिखा है कि–" कोई मुनि विकृति की लालसा से पूर्व परिचित सगे स्नेहियों के यहाँ अकेला गोचरि जानेका विचार करें तो वह मुनि दोष के पात्र है इसलिये ऐसा नहीं करना चाहिये और अन्य मुनियों के साथ समयपर (तृतीय प्रहर मे) जुदे जुदे कुल से आहार लाकर सब मुनि विभाजितकर (बांटकर) आहार करें. " इस सूत्र में विकृतियों के नाम दर्शाये हैं जिसकों देख कर पंडितजीनें इस निषेधविधि वाक्य कों विधिवाक्य बनाकर मांस भोजन का आरोप किया है यह केवल अर्थ का अनर्थ किया गया है आचारांग सूत्र का यह ५६५ का सूत्र जैन मुनिको विकृति नहीं लेने का आदेश करता है और विकृति का वर्णन वही है जो कल्प सूत्र में है.

आचारांग, दसमाध्ययन के नवम उद्देश के ६१९ के सूत्र में जो यह उल्लेख है कि–" मांस–मत्स्य भूंजते देख कर या पूडी मिठाई तलती देख कर मुनिने लोलुपी बन कर दौड कर लेना या मांगना नहीं वेहेर ना नहीं. कदाचित् रोगी मुनि के लिए आव-श्यकता हो तो उपरोक्त नियम रोगी के लिए नहीं है " इस सूत्र का भी पंडितजीने अर्थका अनर्थ किया है क्योंकि यह पाठ भी लेने का निषेध करता है और उपरोक्त नियम रोगी मुनि के लिए नहीं है लिखा है और रोगी के लिए क्या नियम है ? यह इस पाठ में स्पष्ट भी किया नहीं है कारण अन्यत्र उल्लेख है और यहा पर जो मांस मत्स्य शब्द आया है उस का अर्थ फल या वनौषधी करना चाहिए क्योंकी उपरोक्त पाठ में स्पष्ट लिख दिया है कि–

यह विधि रोगी मुनि के लिए नहीं हैं. अर्थात् रोगी मुनि-मांस (जंत्रीरादि फल) और मत्स्य (भ्रंगराज, जलोत्पन्न रोग परिहारक वनौषधी) लेना. यानी आरोग्यवान मुनि ने गीले फल या हरितकाय पानोंवाली भाजी भी अपक्व नहीं खाना किन्तु रोगी मुनि ने खाना. यह इस सूत्र का रहस्य है. इतनी स्पष्ट बात होने पर भी आचारांग को दोषी ठहराना अर्थ का अनर्थ करना, जैन परिभाषा को त्याग अर्थ करना यह एक प्रकार का भयंकर दुराग्रह है.

आगे आचारांग के दसमाध्ययन के सूत्र ६२८ से ६३० तक के तीन सूत्रोंमें से प्रथम के ६२८ के सूत्र में यह साफ लिखा है कि " ईख (सेलडी) आदि जिन में थोडा खाने का पदार्थ हो और फैकने का पदार्थ विशेष हो ऐसे पदार्थ मुनि और श्रमणिका ने नहीं लेना, एवं ६२९ वें सूत्र में " **बहुअट्ठियं मंसंवा मच्छंवा बहुकंटगंवा** " इन शब्दों का पंडितजी ने निन्द्य अर्थ किया हैं परंतु फणस या बोर आदि फलोंमें गुठलीएँ जो होती हैं उन्हे फलों के अस्थि माने हैं एवं फलों में रहा हुआ गर्भ को मांस कहते हैं जो फलो के मध्य में खाने योग्य सार पदार्थ हैं. इस लिए कोई ग्रहस्थ फलादि देना चाहे तो मुनि साफ कह दें-कि-गुठलियाँ (अस्थियाँ) नहो, या कम हो ऐसे फल का (मांस) हमें दो! अगर गृहस्थ बहोत गुठलियाँ या बहोत काँटें जिन वनास्पति में हो ऐसे फल या भाजी (कांटेवाली चंद लाई, मेघनाद, मीनाक्षी आदि) लाकर दें तो मुनि न लेवें, यदि पात्र में बलात्कार से डाल दें तो एकान्त में जाकर गुठली आदि फैंक दें और फल

खा छे. फल, भाजी और बनस्पतिजन्य औषधियों के नाम भी मीन-मत्स्य मांस आदि हैं ये हम पीछे बतला चुके हैं उन अर्थोंकी ओर न देखकर अविचार से पंडितजी ने जो निन्द्य अर्थ किया है वह मानने योग्य नहीं हैं क्योंकि ६३० का सूत्र यह स्पष्ट दर्शा रहा है कि-" कोई गृहस्थ,मुनि को निमंत्रण करके छे जाँय और कहेंकि "तुम बहोत गुठलियाँ (अस्थि) वाला फल (मांस) चहाते हो तो मुनि उत्तर दे कि-नहीं. मुझे गुठली रहित लेनेकी आज्ञा है और टीकाकार ने बाह्यपरीभोग के लिए लिखा है उसका कारण यह है कि-कदास टीकाकार के समय में महा विकृतियाँ या, औषधियों, बाह्य परिभोग में खानेका व्यवहार प्रचलित हो तो भी क्या आश्चर्य हैं! और महाविकृति में माखण भी तो है जिसका आज भी खुजली की औषधी में उपयोग बाह्य परिभोग के लिए भी किया जाता है इस लिए टीकाकार ने ऐसा लिखा है यहांपर पंडित अजित कुमारजी जो यह कहते हैं कि-" मांसका बाहेर उपयोग करना टीकाकार कहते हैं तो क्या मांस कोई तेल है सो मांस का मर्दन करना बतलाया है" परंतु पंडितजी को यह खबर कहां है कि-आयुर्वेद में ऐसे कितनेक भयंकर वृणादि रोगोंका वर्णन हैं जिन रोगोंमें मांस ऊपर बांधने से ही वह वृण मिट सकता है अन्यथा मृत्यु होजाती है ऐसे रोगों के लिए यदि "बाह्यपरिभोगार्थं" का पाठ टीकाकार ने लिखा हो तो आश्चर्य क्या है! स्मरण रहे कि-मांस मद्य आदि को किसी श्वेताम्बर शास्त्रों ने निर्दोष नहीं लिखा तथापि बलात् पंडित अजित कुमारजी जैनागमों को दोषी ठहराना चहाते हैंयह उन का प्रमाद है.

एवं दसवैकालिकसूत्र में " बहुअट्ठियंपुग्गलं " वाली जो गाथाएँ है वह आचारांग के सूत्र ६२९.–३० का गाथा रूप में अवतरण है. इस लिए उपरोक्त अर्थही यहां करना चाहिए और दसवैकालिक सूत्र की रचना आचारांगपरसेही हुई है इस लिए वही अर्थ यहां समझना चाहिये.

आचार ग्रंथों में चार प्रकार के सूत्र हुआ करते है. (१) निसर्ग विधिसूत्र. जिस में मुनियों के लिए सर्व साधारण रूपसे चारित्र पालने का वर्णन है. (२) अपवाद विधिसूत्र. जिस में मुनियों के अयोग्य व्यवहार को रोकने लिए वर्णन है. (३) निसर्ग अपवाद सूत्र. जिस में पूर्व भाग में निसर्ग विधि और पर भाग में अपवाद विधि का वर्णन हो. (४) अपवाद निसर्ग विधिसूत्र जिस में निषेध पदार्थो का अत्यन्तात्यन्त अपवाद के समयही उपयोग किया जाय. यह सूत्र ग्रंथ की रीत हैं इस बात को नहीं जानने वाले या जान बूझके विपरीत अर्थ करने वाले आगमोंपर लांछन लगा देते हैं. उनको ब्रह्मा भी समझाने को समर्थ नहीं है.

आचारांग सूत्र के दो श्रुत स्कंध हैं. यानी पूर्वार्ध और उतरार्ध. जिनमें पूर्वार्ध में मुनियों के आचार के संबंध में कठोरसे कठोर नियमोंतक बतलाए गये हैं. अतःइससे अधिक कठोर नियम होही सकते नहीं. और दुसरे श्रुतस्कंध में (उत्तरार्ध में.) यह दर्शाया गया है कि–पूर्वार्ध में दर्शाये गये नियमों में जो जो अपवाद है जिनका कारणवशात् कभी अवलम्बन करलेना पडे तो

किस प्रकार फरलेना या विकट प्रसंग में कैसे उत्तीर्ण होना इसीके लिए चूलीका के रूपमें यह दूसरा श्रुत स्कंध है. यह बात आचारांग सूत्रके अभ्यासी मुनि अच्छी तरहसे जानते हैं अतः इस बातको नहीं जानने वालेही या जानबूझकर अर्थका अनर्थ करने वालेही विपरीत अर्थ किया करते हैं यह उनका प्रमाद है. आगे, पं. अजित कुमारजी इस प्रसंग में कहते हैं कि-" श्वेताम्बर तथा स्थानकवासी सम्प्रदाय में सैकडों अच्छे २ विद्वान् साधु हुवे हैं उनमेंसे किसी ने भी इन वाक्यों का नतो परिशोधन किया न बहिष्कृत किया " इस के उत्तरमें मालुमहो कि-श्रुतधरों के वचनोंको परिशोधन या बहिष्कृत करनेका किसीको क्या अधिकार है? और परिशोधन या बहिष्कृत करने योग्य कोई वाक्य भी तो नहीं है. अतः श्वेताम्बर विद्वान् अच्छी तरह से उन पाठों का अर्थ समझतेथे और समझते है. यह तो दिगंबर सम्प्रदायकाही काम है जिन्हों ने परिशोधन और बहिष्कृत कर पीछेसे शास्त्रों की रचना की है इसी लिए उनमें आप्तताकी गंधतक नहीं है.

दिगंबरी पद्मपुराणमें मांसभक्षण का विधान.

आर्य समाज के मुन्सी मगन विहारी लालने अपनी पुस्तिका में दिगंबरी पद्मपुराणका हवाला देकर लिखा है कि-" राजा सौदास नित्य प्रति एक बालक का मांस खाताथा. एवं महीदेव और महीदेव इनके घरमें नित्य मछलियाँ पकाई जाती थी ". इसी प्रकार मानव धर्म संहिता में पृष्ट २२७ पर उल्लेख है कि " राजा

सोमदत्त नित्य बालक का मांस खाताथा अन्त समय मोक्ष गया. पुन्याश्रव कथा कोष, आराधना कोष में ऐसा वर्णन है. उन दोनों लेखकों को आजतक किसी दिगम्बरी विद्वानने उत्तर नहीं दिया इसका क्या कारण ? इसका अब भी आप विचार करें. हमारी समझ से तो ऐसे निंद्य लेखों से कोई लाभ नहीं है और न हम किसी धर्म के ग्रंथोंपर या समाजपर ऐसे निन्द्य लेख लिखना चहाते हैं. दिगम्बरी कथा ग्रंथों में बहुतसी अत्युक्तिएँ, असंभव और सिद्धान्त विरुद्ध एवं इतिहासशून्य दन्त कथाएँ हैं जिनका परिशोधन और बहिष्कृत करना योग्य है एवं रक्तांबर प्रभाचन्द्र भगवती आराधना के टीकाकार हो गये हैं उनको उनकी विद्यमानतामें दिगंबर समाज ने बहिष्कृत क्यों नहीं किया ? और उनके लिखित ग्रंथ भी मान्य क्यों है ! व्यर्थ दुसरों कोही उपालंभ देना यह न्याय किस घरका ! अस्तु.

मधु और मद्य.

श्वे. म. समीक्षा पृष्ट १६० से १६२ तक " क्या साधु मधु मद्य भी सेवन करें " इस प्रकरण का उत्तर विकृति के वर्णन में आचुका है इस लिए पृथक् लिखनें की आवश्यकता नहीं है. मधु आदि शब्दों के हम अनेक अर्थ पीछे बतला चुके हैं इस लिए श्वेताम्बर शास्त्रों में जहाँ कहीं यह शब्द आया हो वहाँ निन्द्य अर्थको त्यागकर सरल अर्थ करलेना चाहिए. एवं मद्य नाम शराब का ही नहीं है किन्तु मादक पदार्थ मात्र को और अहंकार को भी मद या मद्य

कहा जाता है अतः पंडित अजित कुमारजीने इस प्रकरण में भी द्वेष पूर्ण उल्लेख किया है वह अयोग्य है.

आगम समीक्षा

श्वे. मत समीक्षा पृष्ट १६२ से १७२ तक " आगम समीक्षा " नामक प्रकरण में भी वही पिष्ट पेषण कर श्वेताम्बरो के आगमों को अमान्य ठहराने के लिए यद्वा तद्वा लिखकर बुद्धिका परिचय दिया है. वह अवर्णनीय है इसका उत्तर और आगम ग्रंथों की महत्ता और आर्षता हम संघ भेद प्रकरण में दर्शा चुके है तथापि हम यहां पर इतना कह देना चाहते है कि जैनागमों की महत्ता दिगंबरी संप्रदाय के प्रोफेसर हीरालालजी एम्. ए. आदि अनेक विद्वान मान्य करते हैं. और दिगम्बर संप्रदाय के सभी ग्रंथ आगमों का आधार लेकर बनाये गये हैं। श्वे. आगम ग्रंथों की महिमाके गीत गाते हुए प्रो. हिरालालजी कहते हैं कि " प्राकृत भाषाओं के ज्ञान के लिये आज विद्वत् समाज को जैन साहित्य का सहारा लेना पडता है. इसी बातके लिये श्वेतांबर आगमका यूनिवर्सिटियों मे जगह २ मान है क्योंकि अर्ध मागधी प्राकृत का रूप केवल वहीं मिलता है दिगंबर साहित्य मे समय २ की अनेक प्राकृत भाषाएँ सुरक्षित हैं पर जिस रूप में हमारे प्राकृत ग्रंथ अभी छपे हैं उस पर से यही कहना कठिन है कि वह कौनसा प्राकृत है ! उनमें व्याकरण की दृष्टि से बहुत खीचडी दिखाई देती है इस रूप में उसे संसार के सामने प्रस्तुत

में हमारा गौरव नहीं है" (जैन दर्शन अंक १३ वर्ष ता.१६
ारी सन् १९३४ पृष्ठ ३६३ पर देखो.) उपरोक्त अवतरण
से पाठक समझ सकते हैं कि-भाषा की दृष्टी से दिगंबर शास्त्रों
अपेक्षा जैन श्वे. आगामों की प्राचीनता पक्षपात रहित दिगंबर
तों को भी मान्य है अतएव पं. अजित कुमारजी का दुराग्रह
ना भयंकर है जिसको उन के संप्रदाय के भी विद्वान् मान्य
रख सकते यह उपरोक्त अवतरण से स्पष्ट है. इस विषय में
ना कह देना पर्याप्त है कि आगमों की समीक्षा करना सहज
नहीं है. जिन आगमों को पुराण मतवादी दिगंबरी पंडित
ान्य और अर्वाचीन ठहराने का प्रयत्न कर रहे हैं उन्हीं
गमों को जर्मन देश निवासी पंडित वर्ग हृदय का हार समझकर
ह में रखते हैं, मुद्रित करते हैं और मुक्त कंठ से प्रशंसा करते
प्रस्तुत में ही डॉ. शूर्बींग ने दशवै कालिक सूत्रका सम्पादन
या है. उक्त ग्रंथ सिज्जंभवसूरि की कृतिका है. जो भगवान
हावीर के चतुर्थ पट्ट पर विराज मान थे. इतना प्राचीन ग्रंथ
गंबर सम्प्रदाय में एक भी नहीं है. आगमों की उपयोगिता में
तना कहना अलम् है;

श्वेताम्बर शास्त्रों का निर्माण काल.

श्वे. म. समीक्षा पृष्ट १७३ से १९६ तक पंडितजीने यह
तलाने का प्रयत्न किया है कि दिगम्बर शास्त्रों के आधार से श्वे.
शास्त्रों की रचना हुई है यह बात असत्य है. क्यों कि-श्वेताम्बरों के

महामान्य आचारांगादि अंग उपांगादि शास्त्र पूर्वधरों के कथित महावाक्यों का संग्रह है. श्रु. भद्रबाहु कृत दस निर्युक्तिएँ भी आज विद्यमान है. जिसको देवर्द्धि गणी ने ग्रंथस्थ किया अर्थात् पुस्तकारूढ किया, देवर्द्धि गणी को आगम प्रणेता कहना शब्दच्छल करना है. और भूतबली कृत " षट् खंडागम " कहाँ पर है? दर्शन तो कर पावें! फिर कुछ कहैं. एवं शिवशर्म्म स्तुरि कृत कर्म प्रकृति ग्रंथ की छाया लेकर ही भूतबली ने षट् खंडागम और नेमीचंद्र द्वारा गोमट सार नामक दि. ग्रंथ बनाहै. अतः यह कहा जा सकता है कि दिगम्बर ग्रंथ श्वेताम्बर ग्रंथों के आधार से बने है और कहीं २ पृथक् खिचडी भी पकाई है. इस विषय में विस्तार पूर्वक जानना हो उसने हिन्दी का प्रथम कर्म ग्रंथ पृष्ट १२५ से १३७ तक देख लेना. और संघ भेद समीक्षा प्रकर में देख लेना. तथा षट् खंडागम के कर्त्ता भूतबली का समय, पुराण मतवादी दिगंबर कुन्दकुन्द के समय से कुछ पहले मानते हैं और यह कहते हैं कि कुन्दकुन्द नें षट् खंडागम पर एक टीका ग्रंथ लिखा था वह अप्राप्य है. परंतु इतिहासिक प्रमाण इस के विपरी हैं. बेलगुला का एक शिला लेख नं. १०५ (२५४) यह बतलाता है कि— भूतबली कुन्दकुन्दान्वय हुए हैं. इस बात की गवेषणापूर्ण समालोचना बाबू जुगलकिशोरजी ने रत्न करंड श्रावकाचारके समय निर्णय प्रकरण पृष्ट १७९ पर की है.

कुन्दकुन्द के समय में भी बडी गडबड है. यह बात हम संघ भेद समीक्षा प्रकरण में लिख चुके हैं कि—उनका विक्रम की

७ वी शताब्दि के पहले होने का कोई सबल प्रमाण नहीं है. और यही समय भूतबली का भी है. अतएव श्वेताम्बर जैनाचार्य शिवशर्म्म सूरिकृत कर्म ग्रंथ के पश्चात् ही पट् खंडागम की रचना हुई है एवं शिवशर्म सूरिने जिन २ आगम ग्रंथों के आधार से कर्म ग्रंथों की रचना की है उन ग्रंथों की सूची पं. सुखलालजी ने कर्म ग्रंथ ४ हिन्दी पर विस्तार पूर्वक देदी है. अतएव यह बात स्पष्ट है कि–श्वेतास्बर जैन सम्प्रदाय के मान्य ग्रंथों के आधार पर से दिगंबर सम्प्रदाय के ग्रथों की रचना हुई है. तथा न्याय विषय के ग्रंथों में सब से प्रथम जैन न्याय का ग्रंथ " सम्मतितर्क " है उस के पीछे अन्य ग्रंथ बने है. उक्त ग्रंथ का समय विक्रम की पहली शताब्दी है. परीक्षा मुख आदि दिगम्बर सम्प्रदाय के न्याय के ग्रंथ सम्मति-तर्क की छाया लेकर बने है कुमुदचंद्र और वादी देवसूरी का शास्त्रार्थ हुआ जिस में श्वेताबरों की विजय हुई और दिगाम्बरों की पराजय हुई यह इतिहास सिद्ध बात है और यह बात पं. अजित कुमारजी कों जरूर खटकती है परंतु " कोटा कोटि " शब्द के अनेक अर्थों को आज भी समझने वाले पंडित बहोत कम है और एक ही शब्द का सर्वांगसुन्दर अर्थ करना टेढी खीर है. अतएव कुमुदचंद्र का कोटा कोटि शब्द के अर्थ करने में वादिदेव सूरी द्वारा पराजित होना कोई असंभव बात नहीं है. एवं श्वेताम्बर शास्त्रों के आधार से ही दिगंबर शास्त्र रचे गये हैं. इस विषय का विशेष दिग्दर्शन संघ भेद प्रकरण में करा दिया गया है पाठक वहाँ पर देख सकते हैं.

साहित्य विषय की नकल.

श्वे. म. समीक्षा पृष्ट १९७ से २०८ तक साहित्य विषय की नकल के संबंध में पं. अजित- कुमारजीने जो उल्लेख किया है वह सर्वथा मिथ्या है क्यों—कि—वाग्भट्ट विक्रम की १३ वीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ है. डॉ. प्रफुल्लचन्द्र रॉय, भिषगाचार्य गणनाथ सेन और पं. हरि प्रपन्नजी शास्त्री आदि अनेक विद्वानों ने वाग्भट्ट का यही समय माना है और हेमचंद्राचार्य भागभट्ट से पहले हुए हैं. अतएव वाग्भट ने हेमचंद्राचार्य के साहित्य ग्रंथ की छाया लेकर रचना की है. एवं वाग्भट श्वेताम्बर जैन श्रावक था. उसने वि. सं. १२०३ में शत्रुंजय तीर्थ का १३ वाँ उद्धार किया है जिस का इतिहास श्वेताम्बर ग्रंथों में उल्लिखित है. मारवाड में बाहड मेर नगर विद्यमान है वह इसी बाहड (वाग्भट्ट) मंत्री का बसाया हुआ है. वाग्भट्ट को दिगम्बर श्रावक कहना गप्प है. और इतिहास की अनभिज्ञता एवं दिगम्बर मत का दुराग्रह है. इस के विषय में अधिक देखना हो उसने मेरा लेख वाग् भट्ट के संबंध में " जैन साहित्य सम्मेलन जोधपुर " की रीपोर्ट में प्रकट हुआ है. वह देख लेवें.

दुसरी बात यह है कि—शब्द साम्यता, अर्थ साम्यता, या विचार साम्यता एक दुसरे लेखक के लेखों में रहने पर भी उसे एक दुसरे की नकल कहना असत्य है क्यों कि—ऐसा कभी २ स्वाभाविक भी बन जाता है. जैसा कि—भक्तामर स्तोत्र का २३ वाँ काव्य "त्वामा मनंति मुनयः" और शुक्ल यजुर्वेद की "वेदाहमेतं

पुरुषं महान्तम् " वाली ऋचा इन दोनों में शब्द और अर्थ एक दुसरे के साथ अधिक तर मिलता जुलता है. तथापि हम एक दुसरे की नकल नहीं कह सकते.

कई दिगंबर ग्रंथों में हिन्दु ग्रंथों की छाया ली गई है एवं " काव्य प्रकाश " हिंदु साहित्य ग्रंथ में, काव्य रचना का जो आशय बतलाया है वही हेमचन्द्राचार्य ने और वाग्भट्ट ने दर्शाया है.

" काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहार विदे " आदि (काव्य प्रकाश)
काव्यमानन्दाय यशसे कान्तातुल्यतयोपदेशाय च (हेमचन्द्र)
काव्यं प्रमोदायानर्थपरिहाराय व्यवहारज्ञानाय त्रिवर्गफलोभाय-
कान्ता तुल्यतयोपदेशाय कीर्तयेच. (वाग्भट)

इन उपरोक्त तीनों अवतरणों में अर्थ साम्यता शब्द साम्यता है. परंतु इस से एक दुसरे की नकल नहीं कह सकते क्यों कि- साहित्य ग्रंथों में अलंकारों के लक्षण दर्शानें में उन्हीं परिभाषिक शब्दों के प्रयोग किए जाते है जो एक दुसरें से मिलते जुलते होते हैं एवं संस्कृत साहित्य ग्रंथों में क्या श्वेताम्बर और क्या दिगाम्बर सभी ने हिन्दु साहित्य ग्रंथों का भाषा की दृष्टि से अनु करण किया है यह निर्विवाद है. अतः साहित्य की नकल करनें का कहना असत्य है.

प्रथमानु योग की बातें.

श्वे. म. समीक्षा पृष्ट २०६ से २०८ में-" भोगभूमिज का अकाल मरण " प्रकरण में कल्पसूत्रान्तर्गत ऋषभ चरित्र में जो

यह लिखा है कि-' तालवृक्ष के फल के पडने से युगलियों में पुरुष की मृत्यु हुई और स्त्री रहगई जिस का नाम सुनन्दाथा यह भविष्य में ऋषभ देव भगवान् की पत्नि हुई." इस को पंडीतजी सिद्धान्त विरुद्ध कथन बतलाते हैं परंतु अपवाद रूप क्वचित् एकादा बनाव ऐसा बनजॉय वह नैसर्गिक नहीं कहा जासकता एवं हरिवंशोत्पत्ति के संबंध में भी ऐसाही अपवाद रूप कथन है. और इसी प्रकार-" केवल ज्ञानी का घर में निवास " पृष्ट २११ और " केवल ज्ञानी नाटक खेले " पृष्ट २१२ इस विषय में हमारा कहना इतनाही है कि-केवल ज्ञानी के लिए घर और वन समान है इस लिए कुर्म्मापुत्र घर में ६ मास रहे इस में केवल ज्ञान को कोई बाधक नहीं क्यों कि-" वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम् गृहेपि पंचेन्द्रिय निग्रहं तपः, चकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते, निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम् " इस न्यायसे ज्ञानी को घर और वन समान होता है.

श्वे. म समीक्षा पृष्ट २१२ पर " क्या केवल ज्ञानी नाटक भी खेलते हैं? " नामक प्रकरण में कपिल केवली ने चौरों को प्रति बोध देने के लिए नाटक खेला लिखा है यह झूठ है. आगे लिखते हैं " ताल संयुक्त छन्दों का गाना भी मोहनीय कर्म का ही कार्य है " यह पंडितजी का कहना सर्वथा असत्य हैं क्यों कि-गायन शास्त्र का यह मन्तव्य है कि-शब्दोच्चार मात्र सप्त स्वर और ३ ग्राम के बाहेर नहीं है इस लिए तीर्थंकरों की देशना मालकोश राग के स्वरों में ताल संयुक्त हुआ करती है. एवं जिनेन्द्र गुण गान

ौर अनित्यादि भावना के भजन निराग चित्त से भी होते हैं इस
लेये कपिल केवली का उपदेश चौरों के हृदय में नाटक के रूप
में प्रणमन हुआ हो एवं यह संसार भी एक प्रकार का सच्चा दृश्य
ाटक है. इस लिए अलंकारिक शब्दों में उस का शास्त्र ने वर्णन
किया हो. इतनी बात पर से कपिल केवली ने नाटक खेला
कहना भूल है.

श्वे. म. समीक्षा पृष्ट २१४ पर " देव पर मार और स्वर्ग
से निर्वासन " प्रकरण में पंडितजी दो बातें सिद्धान्त विरुद्ध बतलाते
हुए कहते हैं कि– " देवों में न कभी परस्पर लडाई होती है और
न कभी किसी देवपर मार पडती है यह कहना पंडितजी का
कर्मवाद सिद्धान्त के विरूद्ध है क्यों कि–देव कुछ राग द्वेष रहित
नहीं है इस लिए घूसा, मुक्की होना संभव है. और दुसरी बात
यह है कि–संगम देव कों इन्द्र ने स्वर्ग से बाहेर निकाल दिया यह
बात भी सिद्धान्त विरूद्ध नहीं है क्यों कि इन्द्र के अधिकार की
बात है. यदि इसके विरोध में पंडितजी के पास कोई प्रमाण हो तो
बतलावें. और इन्द्र ने संगम को प्रथम से नहीं रोका इसका यही
कारण था कि–वह इन्द्र के वचनों को असत्य ठहराने के लिए
ही महावीर स्वामि को चलायमान करने के लिये गया था यदि
प्रथम से रोकदेता तो इन्द्र प्रतिज्ञा भंग एवं वचन भंग हो जाता इन
बातों का विचार करते तो पंडितजी जरूर समझ जाते. अस्तु.

प्रथमानु योग में एवं दि. कथा कोषों में बहुत गड बड है
जिसकी समीक्षा हम किसी समय करेंगे यहाँ विस्तार के भय से

नहीं लिखना चहाते और पंडितजी के आक्षेपों काही संक्षेप में उत्तर दे देना चहाते हैं.

रात्री-भोजन विचार

श्वे. म. समीक्षा पृष्ट २१६ पर उल्लेख है कि " श्वेताम्बरीय प्रसिद्ध ग्रंथ वृहत्कल्प की टीका में महाव्रती साधु को रात्री भोजन का भी विधान कर दिया है " यह पंडितजी का कहना सर्वथा असत्य है, पंडितजी का काम था वृहत्कल्प की टीका का पाठ उध्दत कर के बतलाना परंतु पंडितजी ने पाठ उध्दत किया नहीं यदि करते तो उसका अवश्य विचार किया जाता. और भगवती, कल्प सूत्र, आचारांग और दशवैकालिक आदि ग्रंथों के पाठों के अर्थों की शंकाओं का जैसा समाधान कर दिया गया है वैसाही वृहत्कल्प की टीका का भी कर दिया जाता. स्मरण रहे श्वेताम्बरीय ग्रंथों में सब के लिये रात्री भोजन का सर्वथा निषेध किया गया है. और पंडितजी सम्यक्त्व शल्योद्धार नामक भाषा ग्रंथ का हवाला देते हैं परंतु उक्त ग्रंथ प्रमाण कोटी का नहीं है वह एक खंडन मंडन का ग्रंथ है इस लिए उसका हवाला देना व्यर्थ है. अर्थात् रात्री भोजन के लिए किसी भी श्वेताम्बर शास्त्र में आदेश नहीं है किन्तु निषेध है. इसी प्रकार चरबी के लेख के संबंध में भी पंडितजी ने पाठ उध्दृत किया नहीं इस लिए पंडितजी का आक्षेप अर्थ हीन है. एवं चरबी के संबंध में विकृति के प्रकरण में हम पीछे लिख चुके हैं.

श्वे. म. समीक्षा पृष्ठ २१७ से २७६ तक संघ भेदका इतिहास और प्राचीनता के जो गीत गाये हैं उसका हमने भी संघभेद समीक्षा नामक प्रकरण में यथार्थ उत्तर देदिया है.

श्वे. म. समीक्षा पृष्ठ २६० से २६४ तक खंडगिरि उदयगिरि पर्वत और गुफाओं का तथा राजा खारवेल के लेखों का और मूर्तियों के संबंध का उल्लेख करते पंडितजी ने नग्नता के जो गीत गाये हैं वे नितान्त असत्य है. खंडगिरि और उदयगिरि पर्वत परकी मूर्तियाँ नग्न नहीं है. और शिला लेखों में भी दिगंबर सम्प्रदाय का नाम निशान तक नहीं है. श्वेताम्बरीय विधिपक्ष गच्छीय बृहत् पट्टावली और खारवेल के शिला लेखों के कथा भाग का संबंध परस्पर मिलता जुलता है एवं बौद्ध ग्रंथों के अवतरण भी श्वेताम्बर ग्रंथों से कितनेक अवतरण मिलते हैं निर्ग्रंथ, श्रवण आदि शब्दों का ठेका अकेले दिगम्बरों ने लिया नहीं है यही शब्द मुनियों के लिए श्वेताम्बर उपयोगमें लेते हैं. अतएव ऐसे शब्द जैनेतरों ने जैन मुनियों के लिए संबोधित किए है इससे यह नहीं कहा जा सकता कि–दिगम्बर सम्प्रदाय के लिए ही किए है अतः दुराग्रह त्याग कर सभी ने जिनेन्द्र मत की प्राचीनता के गीतगाना अच्छा है जिस में सभी जैन सम्प्रदायोंका समास हो जाता है.

श्वे. म. समीक्षा के अन्त में–उपसंहार में १२ कलमें दी है जिन में भी वही कर्णकटू तूती बजाई है. जिस का उत्तर हम प्रथम लिख चुके हैं. अलम्,

प्रथम भाग समाप्त

॥ अर्हम् ॥

श्वेताम्बर मत समीक्षा-दिग्दर्शन.

भाग २ रा.

संघ भेद-समीक्षा.

(ले० श्री. बालचन्द्राचार्यजी, खामगांव.)

प्रथम भाग में पं. अजित कुमारजी के आक्षेपों के उत्तर में समाधान कारक परामर्श हम दे चुके हैं. परंतु श्वे. म. समीक्षा पृष्ठ २१७ से २७६ तक " संघ भेद का इतिहास " नामक प्रकरण में आपने प्राचीनता के और नग्नता के जो गीत गाये हैं वे किस प्रकार के गाये हैं? यह बतला देना भी आवश्यकीय है. आपने " जैन दर्शन " नामक पाक्षिक पत्र में भी इसी लेख को लेख माला के रूप में दुहराया है. हमको प्रथमतः वही लेख माला देखने का प्रसंग प्राप्त हुआ और हमने भी आगरे के " श्वेताम्बर जैन " पत्र में उत्तर रूपसे एक लेखमाला उसी समय प्रकट करदी. उसी लेख मालाका संग्रह यह दुसरा भाग है.

पं. अजितकुमारजी ने भद्रबाहु चरित्र परसे श्वेताम्बर जैन

सम्प्रदाय को अर्वाचीन,–कल्पित और जैनाभास ठहराने का प्रयत्न कियाहै किन्तु उस चरित्र का इतिहास दृष्ट्या कुछ भी मूल्य नहीं है. रत्ननन्धादि अर्वाचीन दिगम्बर पंडितों द्वारा रचागया पौराणिक ढंग के भद्रबाहु चरित्र को आप इतिहास के पन्नों पर सत्य ठहराना चहाते हैं इसीकी आलोचना हमें इस लेख में करनाहै और यह बतला देना है कि–यह चरित्र कल्पित है.

पाठक वर्ग को विदित हो कि जैन सँघ भेद लेख जिन ग्रंथों के आधार पर से निकला है उन ग्रंथों की आलोचना होजाने से उक्त लेख की परीक्षा स्वयँ हो जायगी. अतः प्रथमतः यह देखना चाहिये कि भद्रबाहु जी के चरित्र के बहाने किन २ दिगम्बर लेखकों ने श्वेताम्बरों को जैनाभास कहने का साहस किया है ? इसका विचार किया जाय तो वि० सँ० १००० के लगभग के समय के दिगम्बर लेखक देवसेन ने ' दर्शनसार ' में, वामदेवने ' भाव सँग्रह ' इन्द्र नन्दी ने ' नीतिसार ' में और रत्ननन्दी ने ' भद्रबाहु चरित्र ' में और कोषादि में कुछ अन्यत्र भी जहाँ-तहाँ लिखा गया है वहां वही एक बात का पिष्ट पेषण किया गया है कि प्रथम भद्रबाहु के समय बी० सी० ३६४ वर्ष पर श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति हुई और वि० सँ० १३६ में यह खूब बढ़ा (इसका विशेष वर्णन हम आगे दर्शाएँगे) यह दिगम्बर लेखकों का कहने का सार है इसी बात को पुष्ट करने के लिए भद्रबाहु का चरित्र इतिहास शून्य और कल्पित रचा गया है. भद्रबाहु के समकालीन किसी व्यक्ति द्वारा लिखा हुआ होता तो उस चरित्र में

ऐतिहासिक सत्य रहा हुआ मान भी लिया जासकता परन्तु भद्रबाहु के हजार पनद्रह सौ वर्षों के पश्चात् लिखा हुआ चरित्र किसी भी रीत्या सत्य होने का दावा नहीं कर सकता.

श्री भद्रबाहु जी का-समय.

श्रुतकेवली भद्रबाहु जी का समय श्री वीर निर्वाण संवत् १५६ से १७० अनुसार इस्वी पूर्व ३७१ से ३१७ तक का इतिहास ठहरा चुका है और अब यह समय सर्व सम्मत है. इन्हीं भद्रबाहु स्वामी का चरित्र दिगम्बर ग्रंथों में विक्रम संवत् १००० के समय के लेखकों ने मनमाना कल्पित लिखडाला, और उसमें भी *सब लेखक एक मत नहीं; परस्पर विरोधी घटनाएँ लिखी हैं* (यह हम इसी निबंध में आगे दर्शावेंगे) जिनमें मुख्यत: लेखक हैं श्री हरिषेण आचार्य, इन्होंने अपने रचित् बृहत्कथाकोष में भद्रबाहु श्रुतकेवली का वर्णन किया है. इसका समय है वि० सं० ९८८ के लगभग. दूसरे लेखक है देवसेन जी ये भी लगभग इसी समय में हुए हैं. इन्द्रनन्दी, वामदेव जी ने भी श्री भद्रबाहु के चरित्र पर दृष्टिपात किया है. एक रत्ननन्दी नाम के भट्टारक वि० सं० १६६५ के लगभग हुए हैं इनका रचित भद्रबाहु चरित्र मुद्रित हो चुका है, जिस पर पं० उदयलाल काशलीवाल का अनुवाद और प्रस्तावना है. ये सब लेखक श्री भद्रबाहु जी के समय से पन्द्रह सौ और दोहजार वर्षों के बाद के हैं. इनके लिखे हुए भद्रबाहु के चरित्र को ऐतिहासिक दृष्टया कौन सत्य बतला सकता है ? इन्हीं उपरोक्त लेखकों के आधार पर पं० अजितकुमारजी

जैन शास्त्री, 'जैन दर्शक' नामके पाक्षिक पत्र में "जैन संघ-भेद" शीर्षक एक लेखमाला प्रकट कर रहे हैं और यही कथा श्वेताम्बर मत समीक्षा में दी है. यह इस लेखमाला की बुनियाद है.

पंडित जी का वक्तव्य

पंडितजी ! ता० १६-१२-३३ के 'जैन दर्शन' अंक ११ पृष्ठ २९२ पर लिखते हैं कि "अब दिगम्बरी कथा की सत्यता जांचिये संघ भेद की कथा वह श्री हरिषेण कृत कथा कोष (१० वीं शताब्दी) तथा रत्ननन्द्याचार्य निर्मित भद्रबाहु चरित्र नामक ग्रंथ में उल्लिखित है." आगे चल कर इसी पृष्ठ में लिखते हैं "यह चन्द्रगिरि पर्वत ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्व का है इसके ऊपर न केवल प्राचीन जिन मन्दिर विद्यमान हैं किन्तु अनेक पुरातन शिलालेख भी मौजूद हैं।जिन पर से ऐतिहासिक विद्वानों को इतिहास निर्माण के सुलभ साधन प्राप्त होते हैं ये सारे शिला-लेख माणिक्यचन्द्र जैन ग्रंथमाला के जैन शिलालेख संग्रह नामक पुस्तक में उल्लिखित हैं. इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण शिलालेख चन्द्रगुप्त वस्ति के सन्मुख १५ फीट ७ इंच लम्बी तथा ४ फीट ७ इंच चौड़ी चट्टान पर हेल कनडो लिपि में खुदा हुआ है. यह शिलालेख लुइस राईस् आदि ऐतिहासिक विद्वानों ने आज से प्राय: २२०० वर्ष पहले य.नी वीर सं० २६६ या बी० सी० २६० में लिखा हुआ निश्चित किया है. शिलालेख की प्रतिलिपि इस प्रकार है" इतना लिखकर पंडित जी ने उस लेख की नकल

नीचे उध्दृत की है. जिसको पंडित जी २२००.वर्षों का पुराना शिलालेख बतलाकर सबकी आँखों में धूल डालना चाहते हैं.

पंडित जी के कथन में मृषावाद

" जैन शिलालेख संग्रह "-नामक पुस्तक, नं० २८ माणिकचन्द्र जैन ग्रंथमाला में जो प्रकट कीगई है उसके सम्पादक हैं दिगम्बर श्रावक हीरालाल जी संस्कृत प्रोफेसर किंग एडवर्ड कालेज अमरावती ! उक्त पुस्तक इस समय हमारे सामने रक्खी हुई है जिसको देखने से पत्ता चलता है कि पंडित जी जिस शिलालेख का हवाला देते हैं उसका नं. १ दर्शाया गया है और पार्श्वनाथ वस्ती के दक्षिण की और बतलाया गया है और उस पर वि० सँ ६५७ (शके ५२२) का अनुमान लिखा है, जिसको अजितकुमार जी २२०० वर्षों का पुराना शिलालेख बतला रहे हैं उसी शिलालेख को प्रोफेसर हीरालाल जी शके ५२२ के लग-भग का मानते हैं यहां हम अजितकुमार जी से पूंछते हैं कि जिस ग्रंथ के आधार पर से आप २२०० वर्षों का पुराना शिलालेख कह रहे हैं तो कृपा करके बतला तो दीजिए कि उस ग्रंथ में २२०० वर्ष का पुराना कहां ? किस पृष्ठ पर लिखा है ? यदि योंही कह कर आप लोगों की आँखों मे धूल फैकना चाहते हो तो यह कितना मिथ्यात्व का उदय है. कनडी लिपी में वह लेख है और कनडी लिपी के उत्पत्ति का समय ही लिपि विशारदों ने विक्रम की ६ टी ७ वी शताब्दी का निश्चित कर दिया है तब

यह कनडी लिपी में खुदा हुआ लेख आज से २२०० वर्षों का पुराना किस रीति से आप सिद्ध कर सकते हैं ? यह अब हमें देखना है.

प्रोफेसर हीरालालजी का वक्तव्य

पं० अजितकुमार जी जैन शिलालेख संग्रह नामक पुस्तक का हवाला देकर जिस शिलालेख को २२०० वर्षों का पुराना बतलाते हैं उसी पुस्तक के पृष्ट ६३ पर प्रोफेसर हीरालाल जी उसी शिलालेख की आलोचना करते हुए लिखते है कि—

" शिलालेख नं. १ की वार्ता इन सबसे विलक्षण है उसके अनुसार त्रिकाल दर्शी भद्रबाहु ने दुर्भिक्ष की भविष्यवाणी की, जैन संघ दक्षिण पथ को गया वप्रकट पर प्रभाचन्द्र ने जैन संघ को आगे भेज कर एक शिष्य सहित समाधि आराधना की, यह वार्ता स्वयं लेखक के पूर्व और पर भागों में वैषम्य उपस्थित करने के अतिरिक्त ऊपर लिखित समस्त प्रमाणों के विरुद्ध पड़ती है. भद्रबाहु भविष्यवाणी करके कहां चले गये ? प्रभाचन्द्र आचार्य कौन थे ? उन्हे जैन संघ का नायकत्व कब और कहाँ से प्राप्त होगया ? इत्यादि प्रश्नों का लेख में कोई उत्तर नहीं मिलता !"
(जै० शि० सं पृष्ट ६३)

प्रोफेसर हीरालालजी का स्पष्ट मत पं० अजितकुमार जी के कथन का अनायासे खंडन कर रहा है. एवं एक बात फिर यह भी है कि यह शिलालेख अपूर्ण भी है. लेख के अन्त में खुदाने

(उकराने) वाले का नाम जाति धर्म संवत् शके आदि कुछ भी नहीं है इससे यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि किसने ! कब इस शिलालेख को खुदवाया; इसका उसमे कुछ भी पता नहीं चलता, तथापि प्रो० हीरालालजी आदि ऐतिहासिक विद्वानों का अनुमान शके ५२२ के लगभग है.

और वह कनडी लिपि के विकाश का प्रारम्भ काल होने से अधिक से अधिक पुराना काल शक ५२२ का मानते हुए अपना मत व्यक्त करते हैं कि–

" शिला लेख नं० १ जिसकी वार्तापर हम ऊपर विचार कर चुके हैं अपनी लिखावट पर से अपने को लगभग शक संवत की पांचवी छठी शताब्दी का सिद्ध करता है " (जै० शि सं० पृ० ६४)

कनडी लिपि का जब अस्तित्व ही २२०० वर्ष पूर्व नहीं था, जिस लिपि में वह शिला लेख लिखा गया है. तो फिर पं. अजितकुमार जी तथा लुइस् राइस् या अन्यान्य कोई भी सज्जन उस शिला लेखको किन प्रमाणों पर से २२०० वर्ष पुराना सिद्ध कर सकता है ? पंडित जी ने समझा होगा कि कौन वह पुस्तक देखता है और कौन इतना विचार करता है; मेरी बात चल जायगी. पंडित जी को तो श्वेताम्बर मत आर्वाचीन और दिगम्बर मत प्राचीन सिद्ध करने का दुराग्रह हो रहा है परन्तु याद रखे

इतिहास का विषय उपलब्ध प्रमाणों के अतिरिक्त दुराग्रह नहीं चलने देता.

डॉ. फ्लीट का मत है कि दक्षिण की यात्रा करने वाले द्वितीय भद्रबाहु हुए हैं और चन्द्रगुप्त उनके शिष्य गुप्ति गुप्त का ही नामान्तर है (जै. शि. सं. पृष्ठ ६५) भद्रबाहु नाम के दो आचार्यों के नाम दिगम्बर ग्रन्थों में उल्लिखित हैं एक तो श्रुत केवली भद्रबाहु और दूसरे ये भद्रबाहु जिनसे सरस्वती गच्छ की नन्दी आम्नाय की पट्टावली प्रारम्भ होती है, दूसरे भद्रबाहु का समय इस्वी सन पूर्व ५३ वर्ष व शक संवत् से १३१ वर्ष पूर्व माना जाता है इन्हीं के शिष्य का नाम गुप्ति गुप्त (दूसरा-चन्द्रगुप्त) प्रतीत होता है जिनका राज्य उज्जयिनी में था. प्रश्न यह है कि—डॉ. लुइस् राइस् और पं. अजितकुमार जी जैन शास्त्री किन प्रमाणों से श्रुत केवली भद्रबाहु का दक्षिण में जाने का कहते हैं ! क्योंकि श्रवण बेलगुल के शिला लेखों में भी भद्रबाहु जी के आगमन का उल्लेख नहीं है और जो सबसे पुराना शिला लेख नं. १ का माना जाता है अवशेष सभी शिला लेख नं. १ के पीछे के हैं. वे सभी शिला लेख इस बात को अस्वीकार करते हैं एवं श्रुत केवली भद्रबाहु से लगभग एक हजार वर्ष पीछे के लिखे हुए हैं तथापि श्रवण बेलगुला के किसी भी शिला लेख में बद्रबाहु के दक्षिण में जाने का कोई उल्लेख नहीं है. एवं नं १ का शिला लेख अपूर्ण भी है उसमें संवत् मिती बनाने वाले का नाम मात्र कुछ भी लिखा हुआ नहीं है यद्यपि इस लेख को प्रो. हीरालालजी शक सं. ५२२ का बतलाते हैं परंन्तु, उस

समय कनडी लिपि का अस्तित्व ही नहीं था. इस लिए हमारी राय से तो वह मुख्य लेख भी शके ७०० के लगभग का होना चाहिए एवं हरिषेणाचार्य का मत भी यह है कि श्रुत केवली भद्रबाहु दक्षिण में नहीं गये और वहीं (उज्जयिनी के भाद्रपद स्थान में) परलोक गये. अतः श्रवण बेलगोला के शिला लेख और हरिषेण कथा यह दोनों प्राचीन प्रमाण पं. अजितकुमार जी के विरुद्ध हैं। एवं प्रो हीरालालजी प्रस्तावना में लिखते हैं कि–"इस कथा का समर्थन श्रवण बेलगोला के मन्दिरों आदि के नामों ईसा की सातवीं शताब्दी के उपराँत के लेखों तथा दसवीं शताब्दी के ग्रंथो से होता है इसकी प्रमाणिकता सर्वतः पूर्ण नहीं कही जा सकती (जै. शि. सं. पृ. ७०) इस प्रकार प्रो. हीरालालजी भी शिला लेखों व ग्रंथों की प्रमाणिकता में शंका प्रकट करते हैं और दूसरी बात यह है कि श्रुत केवली भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मौर्यके समकालीन होने में दिगम्बर ग्रंथों में ६७ वर्षों का अन्तर पड़ता बतला रहेहैं और श्वेताम्बर ग्रंथों को प्रमाण भूत मान कर प्रो. हीरालालजी लिखते हैं कि—

दिगम्बर जैन ग्रंथों के अनुसार भद्रबाहु का आचार्यपद, निर्वाण सं १३३ से १६२ तक २७ वर्ष रहा जो प्रचलित निर्वाण संवत् के अनुसार ईस्वी पूर्व ३९४ से ३६५ तक पड़ता है. तथा इतिहासानुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य इस्वी पूर्व ३२१ से २९८ तक माना जाता है इस प्रकार भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त के काल में ६७ वर्षों का अन्तर पड़ता है. श्वेताम्बर

ग्रन्थों के अनुसार श्री भद्रबाहु का समय वीर निर्वाण संवत् १५६ से १७० तदनुसार इस्वी पूर्व ३७१ से ३१७ तक सिद्ध होता है इसका चन्द्रगुप्त के समय के साथ प्रायः समीकरण होता है (जै शि. सं. पृष्ट ६६) मेरा पं. अजित कुमारजी से अनुरोध है कि—पंण्डित जी ! आप प्रोफेसर हीरालालजी की उपरोक्त पंक्तियों पर विचार तो करें !

क्योंकि जो ऐतिहासिक बात दिगम्बर ग्रंथों से ठीक मिलती नहीं उसी बात का श्वेताम्बर ग्रंथों से मेल बराबर बैठ जाता है, समीकरण हो जाता है, यही श्वेताम्बर जैन ग्रंथो की ऐतिहासिक सत्यता का स्पष्ट प्रमाण है. प्यारे पंडितजी दिगम्बर ग्रंथोंसे भद्रबाहु और मौर्य चन्द्र गुप्त के समय में ६७ वर्ष का अन्तर पड़ता है तब भद्रबाहु चंद्रगुप्त को गुरु शिष्य होने का कहना कैसे सम्भव हो सकता है ? अतः उपरोक्त विवरण पर से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भद्रबाहु का दक्षिण दिशा में जाने का कोई सबल प्रमाण नहीं है और नहीं इस बात को कोई शिला लेख स्वीकार करता है तथा न कोई प्राचीन कथाकार इसको कहता है और प्राचीन कथाकारो में और अर्वाचीन कथाकारों में भी परस्पर विरोध है वह भी हम यहा आपको बतला देते हैं—

श्री भद्रबाहु की कथा लेखकों में परस्पर विरोध.

वि. सं. ९८८ (शक० सं० ८५३) में दिगम्बराचार्य

हरिषेण ने एक जैन कथा कोष की रचना की है इसमें भद्रबाहु श्रुतकेवली और मौर्य चन्द्रगुप्त की कथा का उल्लेख है भद्रबाहुजी की कथा का सबसे प्राचीन लेखक श्री हरिषेण ही हैं. इसके पश्चात् देवसेन इन्द्रनन्दी आदि अनेक लेखक हुए हैं जिन्होंने बहुत से परिवर्तनों के साथ मनमाना लिख डाला है. हरिषेण लिखते हैं कि—"भद्रबाहु को ज्ञात होगया था कि-यहां एक द्वादशवर्षीय भीषण दुर्भिक्ष पड़ने वाला है इस पर से उन्होंने समस्त संघ को बुला कर सब हाल कहा और यह कहा कि अब तुम लोगोंने दक्षिण देश को चले जाना चाहिये. मैं स्वयं यहीं ठहरूंगा क्योंकि मेरी आयुष्य क्षीण हो चुकी है "**अहमत्रैव तिष्टामि क्षीणमायुर्ममाधुना**" जब चन्द्रगुप्त महाराज ने विरक्त होकर भद्रबाहु स्वामी से जिन दीक्षा लेली, फिर चन्द्रगुप्त मुनि जो दस पूर्वियों में प्रथम थे, विशाखाचार्य के नाम से जैन संघ के नायक हुए। भद्रबाहु की आज्ञा से वे संघ को दक्षिण के पुन्नाट देशको ले गये इसी प्रकार रामिल्ल स्थूल वृद्ध और भद्राचार्य अपने २ संघों सहित सिंधु आदि देशों को भेजे गये और स्वयं भद्रबाहु स्वामी उज्जयिनी के भाद्रपद नामक स्थान पर गये और वहाँ उन्होंने कई दिन के अनशन व्रत कर समाधि मरण किया—

प्राप्य भाद्रपदं देशं श्री मदुज्जयिनी भवं। चकारानशनं धीरः सदिनानि बहुन्यलम्। समाधि मरणं प्राप्य, भद्रबाहुर्दिवं ययौ (जै. शि. सं. पृष्ठ ५८)

हरिषेण और रत्ननन्द्यादि की कथा में परस्पर विरोध.

भद्रबाहु का उज्जयिनी के पास भाद्रपद स्थान में समाधि मरण होना हरिषेण कहते हैं. और बारह हजार साधुओं के साथ दक्षिण में जाकर चन्द्रगिरी पर भद्रबाहु का देहोत्सर्ग रत्ननंदी बतलाते हैं यह दोनों कथाकारों में कितना परस्पर मत भेद है, यह बात विचार करने के योग्य है. इसी प्रकार चन्द्रगुप्त का ही अपर नाम जिन दीक्षा का विशाखाचार्य होना हरिषेण कहते हैं और चन्द्रगुप्त विशाखाचार्य को रत्ननन्दी भिन्न व्यक्ति बतलाते हैं, यह भी दोनों में महत्व का विरोध है. एवं रामल्य स्थूलवृद्ध और भद्राचार्य को अपने २ संघों के साथ सिंधु आदि देशों में भद्रबाहु ने भेजे हरिषेण कहते हैं और रत्ननन्दी लिखते हैं कि रामल्यादि भद्रबाहु की आज्ञा का उल्लंघन करके वे वहीं उज्जयिनी में ही रहे। इस प्रकार हरिषेण और रत्ननन्दी के लेखों में बहुतसा अन्तर है, विरोध है परन्तु रत्ननन्दी से हरिषेण बहुत प्राचीन होने से हरिषेण का कथन अधिक महत्व का और विश्वास करने योग्य माना जा सकता है और हरिषेण के मत से बेल्गुला के शिलालेखों का भी मत मिलता जुलता है और रत्ननन्दी के मत को शिला लेखों का भी कोई आधार नहीं है इसलिए यदि हरिषेण का मत दिगम्बर मित्र मान लें तो भद्रबाहु के श्रवण बेल्गुल जाने की बात ही कल्पित सिद्ध होजाती है. एवं श्वेताम्बर मतोत्पति के सम्बन्ध में भी रत्ननन्दी की लिखी हुई

कथा नितान्त असत्य ठहर जाती है एवं पं. अजितकुमार जी शास्त्री का लिखा हुआ जैन संघ भेद लेख भी कल्पित और असत्य ठहर जाता है.

चिदानन्द नामक दिगम्बर कवि भद्रबाहु जी के सम्बन्ध में लिखते हुए अपने रचित "मुनिवंसाभ्युदय" नामक कन्नड काव्य में लिखते हैं कि "श्रुतकेवली भद्रबाहु बेलगोल को आये और एक व्याघ्र ने उन पर धावा किया और उनका शरीर विदारण कर डाला (जै. शि. सं. पृ, ५९) देखिये यह कवि व्याघ्र वाली बात लिखकर एक नवीन ही प्रकाश डाल रहा है. और आगे चलकर यह कवि कहता है, "अर्हद्बली की आज्ञा से दक्षिणाचार्य बेलगोल आये। चन्द्रगुप्त भी यहां तीर्थयात्रा को आये थे इन्होंने दक्षिणाचार्य से दीक्षा ग्रहण की कुछ कालोपराँत दक्षिणाचार्य ने अपना पद चन्द्रगुप्त को दे दिया" (जै. शि. सं. पृ. ६०) अर्हद्बली का अस्तित्व दिगम्बर मतानुसार विक्रम की दूसरी शताब्दी मानी जाती है दक्षिणाचार्य को अर्हद्बली के आज्ञाधारक शिष्य बतलाते हैं और उसका शिष्य चन्द्रगुप्त को कवि कहते है इस हिसाब से तो गुप्ति गुप्त (चन्द्रगुप्त) का समयही माना जासकता है अतः इस कवि का और डाक्टर फ्लीट का लिखावट पर से मत एक ठहरता है। अतः सरदे भद्रबाहु का बेलगोल आना और गुप्ति गुप्त का ही अपर नाम दूसरा चन्द्रगुप्त होना इस प्रकार नामों की साम्यता के कारण भूल से

श्रुतकेवली भद्रबाहु और मौर्य चन्द्रगुप्त का विधान करना संभव है। इसके अतिरिक्त श्रुतकेवली भद्रबाहु का बेलगुला जाने के सम्बन्ध में प्राचीन दिगम्बर लेखक और प्राचीन शिलालेख एक भी सहमत नहीं है और अर्वाचीन (१७ वीं शताब्दी के) दिगम्बर लेखक रत्ननन्दी देवचन्द्रादी के कथन परस्पर विरोधी होने से इतिहास का कोई आधार नहीं मिलता. एवं पं. अजितकुमार ऐसी निन्द्य कथाओं के आधार से श्वेताम्बरों को जैनाभास बतलाकर लांछन लगाना चाहते हैं और दिगम्बर सम्प्रदायको प्राचीन सिद्ध करना चाहते हैं परन्तु उपरोक्त आलोचना से स्पष्ट पता लग जाता है कि यह एक निरादंम है. भूल थाप देकर लोगों की आँखों में धूल डालना चाहते हैं परन्तु सत्य छीप सकता नहीं शास्त्री जी संघभेद लेख लिखकर अपने हाथ से अपनी पोल खोल रहे हैं.

चंद्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ मत भेद है भागवतादि वैष्णवों के ग्रंथों में " शुद्रागर्भोद्भवो " लिखा है भागवत स्कन्ध १२ अध्याय १–२ एवं विष्णु पुराण खंड ४ अध्याय २४ पर उल्लेख है इन दोनों ग्रंथों में प्राय: एकसा लेख है एवं चाणाक्य का भी इस मौर्य चन्द्रगुप्त के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है जिसके लिए दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रथ उदासीन हैं इसी प्रकार श्वेताम्बर ग्रथों में भी बहुतसा वर्णन है परन्तु चंद्रगुप्त मौर्य की कथा में एकसी घटनाओं का वर्णन कहीं नहीं है भिन्न भिन्न सम्प्रदाय वाले भिन्न २ बात कह रहे है इसलिए चंद्रगुप्त किसका अनुयायी था ? यह बात विवाद ग्रस्त है

दर्शन सार का असत्य वक्तव्य

देवसेन दिगंबराचार्य ने दर्शनसार में लिखा है कि श्रुत-केवली भद्रबाहु के शान्त्याचार्य और उसका मंदचारित्र वाला जिनचन्द्र हुआ जिसने वि० सं १३६ में श्वेताम्बर मत चलाया और मर कर प्रथम नर्क में गया; खैर नरक स्वर्ग तो भाई हैं। तीर्थंकरों के जीवों को भी कई वार जाना आना पड़ा है और संसारी जीवों ने अनेक वार नरक के अनुभव किए हैं और देवसेन ने क्या नहीं किए होंगे ! खैर इस बात की तो कोई चिन्ता नहीं परन्तु प्रथम भद्रबाहु से ३०८ वर्ष के पश्चात् विक्रम संवत् प्रचलित हुआ और विक्रम के संवत् से १३६ वर्ष जिन चन्द्र हुए इस हिसाब से प्रथम भद्रबाहु से ४४४ वर्ष बाद जिनचन्द्र हुआ और आप भद्रबाहु का शांत्याचार्य और उनका जिनचन्द्र इस प्रकार देवसेन जी तो ४४४ वर्षों में तीन ही पीढ़ी होने का कहते हैं इस कथन में आयुष्यमान का कुछ भी विचार किया गया नहीं, यही देवसेन की गणितज्ञता का विशेष ज्ञान है जिसको कोई स्वीकार नहीं कर सकता परन्तु देवसेन का बचाव करते उदयलाल जी ने लिखा है कि भद्रबाहु के स्थूलभद्र से अर्ध फालक मत चला और कुछ दिन बाद फिर उसमें से श्वेताम्बर मत हुआ यही पं. अजितकुमार जी का कहना है, परन्तु कोई यह पुछे कि इसका क्रमवार इतिहास क्या है ! ४४४ वर्षों में कितनी पीढ़ी होती हैं ! इसका उत्तर पंडित जी के पास क्या है ! एवं मूलसंघ बलात्कार गण की पट्टावली में दूसरे भद्रबाहु का शिष्य विशाखाचार्य अपर

नाम अर्हतत्व लिखा है और रत्ननन्दी श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य विशाखाचार्य को बतलाते हैं इसका क्या परिहार है? एवं दिगम्बर सम्प्रदाय की यावन्मात्र पट्टावलियां परस्पर विरोधी और शिथिल भट्टारकों द्वारा विक्रम की १४ वीं १५ वीं शताब्दी में लिखी जाने के कारण प्राचीन ऐतिहास के लिए उपयोगी नहीं हो सकती इसका पंडित जी ने विचार किया है क्या? और दिगंबर आर्ष पट्टावली ग्रंथ पंडित जी बतला सकते हैं? उस ग्रंथ के कर्ता का नाम समय स्थल आदि सिद्ध कर सकते हैं! हमने डेक्कन कालेज पुना और सिद्धान्त भवन आरा की संग्रहित दिगम्बर पट्टावलियाँ पढ़ीं परन्तु उनमें एक भी आर्ष नहीं, सातसौ आठसौ वर्षों के भीतर की कृति की होनेसे और एक दूसरे पट्टावली ग्रंथ से विरोधी वक्तव्यवाली होने से ऐतिहासिक दृष्ट्या उनका कोई महत्त्व नहीं है.

प्राचीन अर्वाचीन का झगड़ा कबसे चला?

हमारी समझ से तो विक्रम की दसवीं शताब्दी के लगभग यह प्रश्न विवाद ग्रस्त बना। हरिषेण, देवसेन, वामदेव आदि आदि लेखक इसी समय के लगभग हुए हैं, इसके पूर्व के कुन्द कुन्द, समन्त भद्रादि के ग्रन्थों में श्वेताम्बर मतोत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ भी उल्लेख हमारे देखने में नहीं आया और इसके पहिले श्वेताम्बर दिगम्बर जिनमूर्ति में भी भिन्नता नहीं थी। जिन मूर्ति के पुरुष चिन्ह लगाकर दिगम्बरों ने अपना प्रथकत्व स्थापित किया यही समय श्वेताम्बरों में चैत्यवास का है, जिसका विचार श्री

जिनवल्लभसूरि जी ने "संघ पट्टक" नामक ग्रन्थ में किया है। और यही समय दिगम्बरों में चैत्यालयों में रहने वाले द्रव्यलिंगी भट्टारकों के उत्पत्ति का है. इसके पहले दिगम्बर और श्वेताम्बर भिन्न भिन्न शाखाएं होने परभी परस्पर कोई विवाद नही था हमारे इस वक्तव्य के समर्थन में प्रसिद्ध इतिहास लेखक दिगंबर श्रावक नाथूरामजी प्रेमी का वक्तव्य हम उद्धृत करते हैं जिसमें आपने यह बतला दिया है कि दिगम्बरी साधुओं में उस समय शिथिला चारियों की कमी नहीं थी, वह लेख यह है:—

"उस समय के दिगम्बर साधु मठों में मन्दिरों में रहते थे आर्यिकाएँ भी वहां रहती थीं, वे कभी २ उनसे भोजन भी बनवा लेते थे, स्त्रियों से चरण प्रक्षालन कराते थे. सचित्त पुष्प पत्र घी दूध जल केशरादि से चरणों का पूजन स्नान और लेपन कराते थे. सोने चाँदी आदि से चरण पूजाते थे, सदैव एक स्थान में रहते थे शीतकाल में अंगीठी (अग्नि) का सहारा लेते थे, बिछौनों पर सोते थे तेल मालिश कराते थे, नाना प्रकार की औषधियाँ पास रखते थे, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रवाद, धातुवाद आदि के प्रयोग करते थे, पालकियों पर चढते थे कपड़े के जूते पहनते थे, पीतल तांबा आदि धातुओं के कमंडलु रखते थे, चटाई और लज्जा निवारण करने के लिये वस्त्र रखते थे जो कभी पहनते थे जिसे धोबी से धुलाते रंगाते भी थे और भी अनेक प्रकार की चीजें रखते थे इस प्रकार के आचरणों को लक्ष्य करके ही पं. आशाधर ने उन्हें म्लेच्छों के समान आचरण करने वाले लिखा है. (जैन हितैषी भाग १४ अं. १४ और तथा पृष्ठ १०३ देखो.)

इस शिथिलाचार के समय में परस्पर द्वेष बढ़ा और यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि महावीर के सच्चे अनुयायी कौन? इस प्रश्न ने गंभीर स्वरूप धारण किया और दिगम्बर लेखक श्वेताम्बर को जैनाभास कह कर भद्रबाहु चरित्रादि के बहाने श्वेताम्बरों पर नाना प्रकारके असत्य आक्षेप करने लगे. इधर श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने भी अपनी रक्षा के लिये आक्षेपों का सचोट उत्तर देना प्रारंभ किया. श्री जिनभद्र गणि क्षमा श्रमण और हरिभद्रसूरि सरीखे समर्थ विद्वानों ने विशेषावश्यक और टीका में दिगम्बर मतोत्पत्ति के सम्बन्ध में सत्य बात प्रगट कर दी परन्तु दिगम्बर लेखकों ने जैसे श्वेताम्बरोंपर असत्य लॉछन लगाये हैं वैसे उन समर्थ महात्माओं ने दिगम्बरों पर कोई लांछन नहीं लगाया केवल सादी सीधी भाषा में यह स्पष्ट लिखा है कि " वीर प्रभु से ६०९ वर्ष पश्चात् एक शिवभूति सहस्रमल नाम का जैन मुनि था उसने एक दिन गुरु से जिनकल्प का वर्णन सुनकर स्वयं जिनकल्पि होना चाहा, जो कल्प विच्छेद होचुका था. गुरु ने मना किया तथापि माना नहीं और नग्न होकर प्रथक् हो गया. यह शिवभूति दिगम्बर सम्प्रदाय का आद्य प्रवर्तक हुआ. इसके पश्चात् शिवभूति स्थविर कल्पियों के विरुद्ध मत प्रचार करने लगा." बस इस प्रकार सभ्य भाषा में श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विद्वानों ने दिगम्बर मतोत्पत्ति का वर्णन किया है इस कथा के सम्बन्ध में उदयलाल काशलीवाल तथा पं. अजितकुमार जी दिगम्बर सम्प्रदाय के लेखकोंकी यह दलील है कि शिवभूति ने नया क्या किया? जो मार्ग विच्छेद

होगया था उसको फिरसे प्रचलित किया इसमें नाविन्यता क्या है ? परन्तु इसका उत्तर तो बहुत सरल है महावीर के पश्चात् तीर्थंकर पद विच्छेद हुआ, और जंबूस्वामी से केवल ज्ञानादि, दस वस्तु विच्छेद हुई। भद्रबाहु आदि से पूर्वो का ज्ञान नष्ट होगया. यह बात तो हमारे दिगम्बर मित्र भी स्वीकार करते हैं अगर कोई नवीन मत प्रवर्तक यों कह दें कि–केवल ज्ञानादि विच्छेद हुए हैं उनको मैं पुनः प्रवर्तित करता हूँ तो उसका कथन कोई स्वीकार कर सकता है ? कहना ही होगा कि नहीं ! तद्वत् विच्छेद हुवा जिनकल्प मार्ग को पुनः प्रवर्तित करने का आडम्बर करना, असंभव को संभव कहना यह नूतन मत प्रस्थापित करना कहा जासकता है. कहने का तात्पर्य यह है कि विक्रम के एक हजार वर्ष के पश्चात् श्वेताम्बर दिगम्बरों के बीच विद्वेष का बीज बोया गया और उस दिन से आज तक बढता गया.

जैनेतर लेखकों पर दृष्टिपात

प्राचीन कौन है ? यह प्रश्न उठाकर वर्तमान में कतिपय दिगम्बर लेखक जैनेतर विद्वानों के अवतरण तद्धृत कर यह बात कहते हैं कि दिगम्बर सम्प्रदाय का प्राचीनत्व तो जैनेतर विद्वानों को भी स्वीकृत है इसलिए श्वेताम्बर से दिगम्बर मत प्राचीन है इसके लिए बृहत्संहिता का पाठ देते हैं और कहते हैं " नग्नां जिनानां विदु " यह वराह मिहिर को भी दिगम्बर मत मान्य है परंतु यह प्रमाण कितना निर्बल है इसका ख्याल नहीं किया गया. कारण वराहमिहिर

का समय शके १००५ का निश्चित है उसने अपने रचित पंच सिद्धान्तिका नामक ग्रंथ में स्वयं उपरोक्त समय अपने ग्रंथ रचने का बतलाया है और दिगम्बरोत्पत्ति का समय विक्रम सं० १३८ का होने से वराहमिहिर उस समय के पीछे का है. दूसरा प्रमाण महाभारत का बतलाते हैं कि— उत्तंक की कथा में " नग्न क्षपणक " शब्द आया हुआ है इसलिए दिगम्बर सम्प्रदाय का अस्तित्व महाभारत के समय में भी था " परंतु सवस्त्र क्षपणक की ध्वनि भी अर्थापत्ति न्याय से इन्हीं शब्दों में पाई जाती है । तीसरा प्रमाण उदयनाचार्य का देते हैं कि—" निरावरण इति दिगम्बरा " परन्तु उदयनाचार्य नग्नत्व के लाक्षणिक स्वरूप को दर्शाते हैं. यह दिगम्बर सम्प्रदाय को उद्देश करके नहीं लिखा गया. यों तो देव विषय में जैनेतर ग्रंथों में शिव और जिन इन दोनों देवों के संबंध में " नग्न " शब्द का व्यवहार किया गया है शिव को नग्न मानते हुए जैनेतर ग्रंथों में वर्णन है कि—

अहिभूषणोऽप्यऽभयदः सुकलित हालाहलोपि यो नित्यः
दिग्वसनोऽप्यखिलेशः तं शशिधर शेखरं वन्दे

(सु० रत्न० भा० पृ० ४)

विष्णोरचागमनं निशम्य सहसा, कृत्याफणीद्रं गुणम्
कौपीनं परिधाय चर्म्म करिणः शंभू पुरो धावति ।
दृष्ट्वा विष्णुरथं सकम्प हृदय सर्पोऽपतद्भूतले ।
कृत्तिर्विस्खलिता हियानत मुखो नग्नोहरःपातुवः)

इसी प्रकार दुर्गा आदि के लिए दिगम्बरी लिखा है. इस लिए दिगम्बर, नग्न, विवसन आदि शब्द दिगम्बर सम्प्रदाय का

एकान्त सूचक नहीं हैं इन प्रमाणों से तो अपनी प्राचीनता सिद्ध करने वाले लेखक दुराग्रही माने जा सकते हैं.

नग्न शब्द का प्रयोग साधुमात्र के लिए होता है

वास्तव में नग्न शब्द यावन्मात्र साधु (त्यागी) वर्ग के लिए व्यवहार में लाया जाता हैं फिर वह जैन-जैनेतर किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो. फिर चाहे वह वस्त्रधारी साधु ही क्यों न हो— उनको " नग्न " कहने की परिपाटी चली आती है. वैष्णव साधुओं के झुंड के झुंड कुंभ के मेलों पर एक जगह पर हजारों लाखों की संख्या में एकत्रित होते हैं उसको " नंगों की जमात " आज भी लोक कहते हैं. दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रंथों में भी इस बात की पुष्टी मिलती है दिगम्बराचार्य सोमसेन लिखते हैं कि—

> अपवित्र पटो नग्नो, नग्न श्चार्ध पटः स्मृतः
> नग्नश्च मलिनोद्वासी, नग्नः कोपीनवानपि ॥ २१ ॥
> कषाय वाससा नग्नो नग्नश्चानुत्तरीय मान्
> अन्तः कच्छो बहि कच्छो मुक्त कच्छस्तथैवच ॥२२॥
> साक्षान्नग्नः स विज्ञेयो, दश नग्नाः प्रकीर्तिता ॥
> (त्रि. अध्याय ३ पृष्ठ ९३)

अर्थात् (१) अपवित्र वस्त्र धारण करने वाला, (२) अर्ध वस्त्र धारण करने वाला, (३) मलीन वस्त्र धारण करने वाला, (४) कोपीन धारण करने वाला, (५) कषाय रंग में रंगे हुए वस्त्र

धारण करने वाला, (६) उतोर वस्त्र धारण करने वाला, (७) अन्तः कुच्छ यानी लंगोटी धारण करने वाला, (८) वही कच्छ यानी कटीसूत्र वस्त्र रखने वाला, (९) धोती की तरह खुले लांग की तरह चीलपट्ट पहिनने वाला, (१०) बिल्कुल वस्त्र नहीं रखने वाला इस प्रकार नग्न दस तरह के कहे हैं दिगम्बराचार्य कृत त्रैवर्णिकाचार धर्म रसिक शास्त्र से ऊपर के श्लोक उद्धृत किये गये हैं. यह ग्रंथ कोल्हापुर के जैनेन्द्र छापाखाने में मुद्रित होकर दोसी रावजी सखाराम सोलापुर द्वारा प्रकाशित हुवा है. इस ग्रंथ में ग्रंथकार अपना परिचय देते हुए लिखते हैं कि—जिनसेन, समंतभद्र, गुणभद्र, अकलंकदेव आदि के मतानुसार इस ग्रंथ की रचना की गई है उपरोक्त अवतरण से यह स्पष्ट होता है कि—नग्न शब्द साधु मात्र के लिए व्यवहृत है और नग्न के दस भेदों पर से यह भी स्पष्ट है—वस्त्रधारी साधु के लिए भी नग्न शब्द का उपयोग किया जा सकता है एवं दिगम्बर शब्द एकान्त दिगम्बर सम्प्रदाय का सूचक नहीं है किन्तु साधुमात्र का सूचक है इस लिए नग्न, विवसन, निरावरण, दिगंबर शब्दों के आधार बतलाकर प्राचीन होने का दावा करते है उनका यह श्रम निरर्थक है.

हमारा मन्तव्य

हमें तो प्राचीन अर्वाचीन का विवाद ही व्यर्थ प्रतीत होता है. क्योंकि "पुराण मित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्" इस दृष्टि से तो यह प्रश्नही व्यर्थ है. दोनों सम्प्रदाय अर्हत् मतानुयायी होने से कोई भेद नहीं है क्रिया मार्ग में

कुछ भिन्नत्व प्रतीत होता है परन्तु भेदबुद्धि वालों ने, लड़ाकू व्यक्तियों ने बलात् भेद डाल रक्खा है. हमारी दृष्टि में तो हमें श्वेताम्बर और दिगम्बर एवं यावन्मात्र जैन सम्प्रदाय अभिन्न प्रतीत होते हैं परन्तु कोई छल से असत्य आक्षेप करे उसका यथार्थ विचार करना, आलोचना करना यह निष्पक्ष दृष्टि वालों के लिए स्वतंत्र मार्ग है. हम नहीं समझते कि—पं. अजितकुमारजी और उनके साथी ऐसे कलहकारी साहित्य का प्रचार कर क्या लाभ उठाना चाहते हैं ?

क्योंकि जिन २ प्रमाणोंसे दिगम्बर प्राचीन होने को जाते हैं उन्ही प्रमाणों से श्वेतम्बर सम्प्रदाय अपना प्राचीनत्व सिद्ध करने को सामर्थ्यशाली है। यह बात हम ऊपर बतला चुके है इसलिए प्राचीन अर्वाचीन का दुराग्रह यहाँ है।

जैन मुनि को वस्त्र रखने की आज्ञा है ?

वर्तमान के कुछ दिगम्बर लेखक जैन मुनि को वस्त्र रखने का एकान्त निषेध करते हैं परन्तु प्राचीन दिगंबर ग्रंथों में वस्त्र पात्र रखने का एकान्त निषेध कहीं पर नहीं हैं. वस्त्र रखने से परिग्रही हो जाना न कहीं लिखा है और न वस्त्र परिग्रह है. तत्वार्थ सूत्र में तो " **क्षेत्र वस्तु हिरण्य सुवर्ण धन धान्य दासीदास्य कुप्यं** " इस तरह नव प्रकार परिग्रह के माने है और मूर्छा रहित वस्त्र-पात्र को परिग्रह कहना दिगम्बर शास्त्रों को

सम्मत नहीं है प्रत्युत दिगम्बर शास्त्रों में तो मुनि को वस्त्रमात्र रखने की आज्ञा दी है.

१—श्रुत सागर सूरि ने तत्त्वार्थ सूत्र की टीका में लिखा है—

" लिंगं द्विविधं, द्रव्य भाव लिंग भेदात् द्रव्य लिंगिन असमर्था महर्षयः सीत कालादौ कम्बलादिकं ग्रहित्वा न प्रक्षाळते न सीव्यंति न प्रयत्नादिकं कुर्वंति अपरकाले परिहरंति इति भगवत्याराधना प्रोक्ताभिप्रायेण कुशीला पेक्षया वक्तव्यम् " अर्थात् सीत कालादिक में मुनि कम्बल आदि वस्त्र रख सकते हैं.

२——परमात्म प्रकाश की टीका में टीकाकार ब्रह्मदेव कहते हैं——

" परमोपेक्षा संयमाभावे तु वीतराग शुद्धात्मानुभूति भाव संयम रक्षणार्थं विशिष्ट संहननयादि शक्त्याभावे सति यद्यपि तपः पर्याय शरीर सहकारीभूतमन्नपानसंयमशौचज्ञानोपकरण तृणमय प्रावरणादिकं किमपि गृह्णंति तथपि ममत्वं न करोति (परमात्म प्रकाश टीका गाथा २२६ पृष्ठ २३२) अर्थात् शक्ति के अभाव में भाव संयम के रक्षण के लिए तृणमय उत्तरीय वस्त्र रखने की आज्ञा है. रुई भी तृण के समान वनस्पति जन्य है इसलिए घास के वस्त्र और सूत के वस्त्र की एक ही जाति है अतः तृणमय वस्त्र रखने की आज्ञा है तो फिर रुई के बने वस्त्र लेने में क्या दोष है ?

३—ज्ञानार्णव में लिखा है—

निः संगोपि मुनि र्न स्यात् संमूर्च्छः संग वर्जितः
यतो मूर्च्छैव तत्वज्ञैः संगसूतिः प्रकीर्तिता ।
(ज्ञा० श्लो० पृ. १६)

भावार्थ यह है कि—जो मुनि निःसंग हो बाह्यपरिग्रह से रहित हो और ममत्व करता हो वह निःपरिग्रही नहीं हो सकता. क्योंकि तत्वज्ञों ने मूर्छा को ही परिग्रह की उत्पत्ति का स्थान माना है. यह कह कर क्या क्या परिग्रह जैन मुनि ने रखना यह बतलाते हैं.

शय्यासनोपधानानि, शास्त्रोपकरणानि च ।
पूर्वं सम्यक् समालोक्य, प्रतिलिख्य पुनः पुनः ॥
गृह्ण तोस्य प्रयत्नेन क्षिप्यंतोवा धरातले ।
भवत्य विकलासाधो रादान समितिस्मृतम् ॥

यानी, शय्या, आसन, उपधान, गिंदुक, तकिया, शास्त्र, शास्त्रोपकरण, पट्टी डोरी, बन्धन, पुष्टका, वस्त्र यानी तृणमय प्रावरण, पीछी और कमंडल यह ग्यारा उपकरण मुनि को रखना लिखा है,

४—मूलाचार में लिखा है—

णाणुवहिं संजमुवहिंतव्वुवव हिमणण्णमवि उवहिंवा
पयदं गह णक्खेवो समिड्डी आदान निक्खेवो ''

इस गाथा में भी ज्ञान संयम तपोपधि के साथ " अण्णमवि उवहिंवा " यानी अन्यान्य भी उपाधि उपकरण यह वाक्य

विशेष ध्यान देने योग्य है क्योंकि इस वाक्य द्वारा कुन्द कुन्दाचार्य और और भी उपाधि रखने की साधुओं की मर्जी अनुसार रखने की आज्ञा देकर यह बात छोड़ देते हैं.

५—राजवार्तिक में भी बकुश दिगम्बर मुनि का वर्णन करते लिखा है— .

" विविध विचित्र परिग्रह युक्त, बहु विशेष युक्तोपकरण काँक्षी भिक्षु रुपकरण बकुशोभवति "

यानी नाना प्रकार के चित्र विचित्र (रंगे हुए) परिग्रह (वस्त्र) युक्त होने पर भी फिर भी परिग्रह की आकांक्षा रखने वाला मुनि को बकुश निर्ग्रंथ कहना चाहिये. इसमें भी वस्त्र पात्र रखने की आज्ञा है.

उपरोक्त पांच दिगम्बर ग्रंथों के अवतरण उद्धृत किये गये है जिनमें नं. १ ऊनकी कंबल सीत काल में रखने का कहते हैं. नं २ घास (रुई) का वस्त्र रखना योग्य बतलाता है. नं. ३ में शुभ चन्द्राचार्य तो मूर्छा को ही परिग्रह मानता है किन्तु परिग्रह को मूर्छा रहित रखने से परिग्रह ही नहीं मानता और ११ उपकरण रखना बतलाता है, नं. ४ पर तो कुन्द कुन्दाचार्य अन्यन्य लिख कर मुनियों की इच्छा पर ही छोड़ देते है और नं. ५ में तो नानाप्रकार के परिग्रह रखने के साथ साथ फिर भी परिग्रह की आकांक्षा रखने वाले मुनि का भी वर्णन करता है । इतने स्पष्ट प्रमाण होने पर भी वर्तमान दि० लेखक यह कहते ही हैं कि—

"रंचमात्र भी वस्त्र रखने की आज्ञा नहीं है" उनका कितना प्रमाद है तथा श्वेताम्बरों के वस्त्र परिधान को जिनमत विरुद्ध और जैनाभास कहने वाले लेखक उन दिगम्बर मुनियों को क्या कहेंगे ?

कि—जिन दिगम्बर मुनियों ने स्पष्ट शब्दों में वस्त्रपात्र का उल्लेख किया है मैं मानता हूँ सरल प्रकृति वाले तो जरूर दुराग्रह त्याग देंगे, दंभी मौन रहेंगे और दुराग्रही कुछ भी ऊंटपटांग लगा ही देंगे परन्तु हृदय में जिनके जैनत्व बसा है वह जरूर सत्य बात स्वीकार कर लेंगे.

स्मरण में रहे कि नग्न रहने से ही मूर्छा रहित नहीं हो सकता, आज कल जर्मनी आदि यूरोप के देशों में नग्न रहने वालों का एक वर्ग तैयार हुआ है और सहस्रों स्त्री पुरुष एक स्थान पर मिल कर नग्न रहने लगे हैं परन्तु क्या कोई उन्हें मूर्छा रहित और जैन मुनि कहने का दावा कर सकते हैं ? अतः नग्नत्व में साधुत्व नहीं है, साधुत्वता निर्गमत्व में हैं. इसीलिए एक कवि ने कहा है कि——

"आशाम्बरत्वे न सिताम्बरत्वे कषाय मुक्ति किल मुक्ति रेव"।

यानी मुक्ति न दिगम्बरत्व में है और न सितम्बरत्व में है किन्तु मुक्ति तो कषायों की मुक्ति होने में है मूर्छा का नाश होने से वह परिग्रह २ के रूप से मिटकर अपरिग्रह होजाता है. जहां ग्रहण है वहाँ त्याग होता है और जहाँ त्याग है वह ग्रहित पदार्थों का है जब कोई पदार्थ का अन्तरंग से ग्रहण ही नहीं है

तब त्याग किस वस्तु का कर सकता है ? इसलिए अन्तरंग से त्याग करने वाला ही सच्चा त्यागी कहा जा सकता है ऐसे त्यागी के पास रत्न कंबल होने पर भी वह त्यागी है और जिसके मूर्छा और ममत्व है ऐसे श्वानादिक पशू नग्न रहने पर भी परिग्रह धारी है यह आर्हत् धर्म का मर्म है. इस बात को न समझ कर "रंचमात्र वस्त्र रखने वाला भी मोक्ष नहीं जा सकता" यह कहने वालों का कितना प्रमाद और दुराग्रह है !

पार्श्वापत्य पांचो रंग के वस्त्र रखते थे

जैन इतिहास देखने से पता चलता है कि—पार्श्वनाथ के शिष्य पांचों रंगों के वस्त्र रखते थे बहुमूल्य वस्त्र भी रख लेते थे अनेक वर्षों तक एक स्थान पर भी रह जाते थे तथापि उनमें भी जो मूर्छा रहित थे उन्हें निर्दोष माने गये हैं इसका हेतु पुरस्सर यही कारण बतलाया गया है कि—ऋजु प्राज्ञ मुनियों के लिए उनकी मर्जी पर यह बात रख दी थी और वक्र जड़ों के लिए महावीर के गणधरों ने त्याग पर विशेष जोर इसलिये दिया कि उस समय में अन्तरंग से त्याग करने वाले अल्प संख्यक थे और आज भी झगड़ा इसी बात का है अन्तरंग रहित बाह्य त्याग दम्भियों में भी हो सकता है परन्तु अन्तरंग का त्याग आना टेढ़ी खीर है और इसी कारण से कठिन तप नियमों के बन्धनों के साथ रहने वालों में बाह्य त्याग वृत्ति वालों में ढंगी अधिकतर होते हैं एक कवि ने कहा भी है कि—

ईज्या ध्ययन दानानि तपः शौचयंधृति क्षमाः।
अलोभ इति भार्गोयं, धर्म चाष्ट विध स्मृतः॥
तेषामाद्य चतुर्वर्गो दंभार्थमपि सेव्य ते।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो महात्मन्येव तिष्ठतिः॥

अर्थात् ईज्या, अध्ययन, दान, तप, शौच्य, धृति, क्षमा, अलोभ यह धर्म के आठ अंग है· जिनमें पहले के चार अंगों को तो दंभ से भी सेवन किये जा सकते हैं परन्तु पीछे के चार. अंग दंभ से सेवन नहीं किये जा सकते वे महात्माओं में ही रहे हुए होते हैं इसलिए बाह्य क्रिया के बन्धन अति कठोर बन जाने से अन्ध क्रिया मात्र रह जाती है और हेतु पुरस्सर-ज्ञानयुक्त क्रिया प्रायः नष्ट हो जाती है यह सिद्धान्त है कि—अति कठोर क्रिया का फल ही विपर्यास है. कालानुसार परिवर्तन होता ही है इस बात को नहीं मान लेने से ही कट्टर दिगम्बर साधु संघ अत्यल्प संख्यक दशा में आगया और जिनकल्पी तो कोई रहा ही नहीं और देशकाल एवं शरीर सामर्थ्य के अनुसार व्रत नियमों में अंध क्रिया का आश्रय नहीं रखने वाला श्वेताम्बर साधु संघ आज भी अनेक शाखा प्रशाखाओं में फलाफूला विद्यमान है. तत्वज्ञों ने तत्त्वार्थादि में निर्ग्रंथों के पाँच भेद बतलाये हैं इसका भी यही कारण है चारित्र की रक्षार्थ वस्त्र पात्रों का उल्लेख है उसका उपहास करना स्वयं का उपहास और मिथ्यात्व है क्योंकि पीछी कमंडलु आदि परिग्रह का आदान-निक्षेप चारित्र रक्षार्थ माना जाता है तब वस्त्र पात्र का भी चारित्र की रक्षा के लिए क्यों नहीं मानना? यह पक्षपात क्यों है?

ग्लान-वृद्ध-बाल अशक्तों के लिये क्या आज्ञा है?

जिस समय हजारों की संख्या में दिगम्बर मुनि विचरते थे उनमें बाल-वृद्ध बीमार और अशक्त भी जरूर होंगे! और ग्राम नगर में आहार के लिये जाना ऐसों के लिये माना भी नहीं जा सकता ऐसों के लिए दिगम्बरों के साम्प्रदायिक ग्रंथों ने क्या आज्ञा दी है! क्या अनशन कर मर जाना! या दूसरे मुनीसे आहारादि मंगवाना! आहार मंगवाने में पात्रों की आवश्यकता है क्योंकि आहार और औषधि में स्निग्ध उष्ण तरल की भी आवश्यकता रहती है ऐसी अवस्था में बिना पात्रके लाया नहीं जा सकता. यदि इन बातों का विचार नहीं किया जाय तो वह शास्त्र शास्त्रही नहीं है और धर्म धर्मही नहीं हो सकता क्योंकि शरीर धर्मायतन है इससे धर्म पालन किया जाता है.

और शरीर के रक्षार्थ आहार-वस्त्र-पात्र रक्खे जाते हैं मानो एक मुनि दीक्षा के पश्चात् अंध या पंगु हो गया तो फिर उसके लिए क्या व्यवस्था करना? इसका यदि दीर्घ दृष्टि से विचार किया जाय तो यह कहना ही होगा कि--त्याग के लिए भी कई प्रकार के उत्सर्ग-अपवादों की आवश्यकता है इसके अतिरिक्त शुष्क त्याग परिग्रह में परिणित हो जाता है.

हमारे उक्त विचारोंकी पुष्टि में अमित गतिके कुछ श्लोक उद्धृत करते है वे कहते हैं कि--

न शक्नोति तपः कर्तुं, स रोग संयतो यतः।
ततो रोगापहारार्थं, देयं प्रासुकमौषधम्॥
न देहेन विना धर्मो, न धर्मेण विना सुखम्।
यतोऽतो देह रक्षार्थं, भैषज्यं दीयते यतेः॥
शरीरं संयमाधारं, रक्षणीयं तपस्विनाम्।
प्रासुकै रौषधैः पुंसां, यत्नतो मुक्ति कांक्षिण॥
वस्त्र-पात्राश्रया दीन्य,ऽपराण्यपि यथोचितम्।
दातव्यानि विधानेन, रत्न त्रितय वृद्धये॥

उपरोक्त श्लोकों में अमितगति स्पष्ट कहते हैं कि–श्रावक ने मुनि को वस्त्रपात्र और आश्रय के अतिरिक्त और भी यथोचित देना इससे रत्नत्रय की वृद्धि होती है इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मुनि को वस्त्र रखने की आज्ञा न होती तो श्रावक ने मुनि को वस्त्र देने की आज्ञा कैसे दी जाती? यह बात विचारणीय है।

इसके आगे फिर अमितगति इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

दुर्भिक्षे मरके रोगे, चौर राज्याद्युपद्रवे।
कर्म क्षयाय कर्त्तव्या, व्यावृत्तिर्व्रत वर्तिनाम्॥
तपोभिर्दुष्करै रोगैः, पीडयमानं तपोधनम्।
योऽत्रवो पेक्षते शक्तो, निधर्मानि ततः परम्॥
गृहस्थोपि यतिर्ज्ञेयो, वैयावृत्य परायण।
वैयावृत्य विनिर्मुक्तो, न गृहस्थो न संयतः॥

अर्थात् दुर्भिक्ष, मरकी, रोग, चौर और राज्य के उपद्रव में कर्मक्षय के लिए श्रावक को सेवा शुश्रूषा करना, एवं कोई मुनि तपश्चर्या से व रोग से पीड़ित हो उसको देख कर उपेक्षा करे

तो उसके समान कोई अधर्मी नहीं है. तथा यह गृहस्थ भी यति के समान है जो वैयावृत्य (सेवा शुश्रूषा) में तत्पर है और जो वैयावृत्य से वंचित है वह न सच्चा गृहस्थ है और न वह सच्चा साधु है इसी प्रकार रत्नकरंड उपासकाध्ययन में समंत भद्र,सामायिक स्थित श्रावक को मुनि की ओपमा देते हुए यह कहते हैं कि-" चेलोपसृष्टमुनिरिव, गृही तदा यति यतिभावं " (रत्नकरंड परिच्छेद ४ श्लोक १२) अर्थात् वस्त्र उपवेष्टित मुनि की भांति गृहस्थ भी सामायिक में यतिभाव को प्राप्त होता है. इससे स्पष्ट है कि वस्त्रों से उपवेष्टित भी मुनि होते हैं, इससे वस्त्र का नितान्त निषेध नहीं है. यह समतभद्र के सम्मत बात है. यहाँ हमें यह एक बात कह देना है कि यदि स्थूलाचार्य आदि ने दुर्भिक्ष वश शरीर रक्षार्थ, व वैयावृत्य की दृष्टि से वस्त्रपात्र दण्ड आदि रख भी लिए तो बुरा क्या किया ! अपवाद मार्ग का ग्रहण भी तो जैन शास्त्रों में है और विशाखाचार्य ने उनको व्यर्थ ठपका क्यों दिया ! क्योंकि अमितगति भी तो दुर्भिक्षादि में वस्त्र पात्र स्थान आदि का आश्रय लेना जैन शास्त्र सम्मत बतलाते हैं, फिर प्रायश्चित लेने का कहना निर्मूल है. इस पर से यह ज्ञात होता है, रत्ननंदी और उनके पथ पर चलने वाले वर्तमान पंडित जैन शास्त्रों के उत्सर्ग अपवाद मार्ग को जानने वाले नहीं और शास्त्र विरुद्ध भद्रबाहु की दन्तकथा लिख कर व्यर्थ ही द्वेष बढ़ाने का प्रयत्न कर डाला और स्थूल भद्राचार्य सरीखे महान् श्रुत ज्ञानी के लिये शिष्यों द्वारा मारे जाने का तथा व्यंतर हो कर उपद्रव करने का कलंक लगाना जिसके लिए कोई ऐतिहासिक ग्रंथ की साक्षी नहीं; अतः रत्ननन्दी सरीखे लड़ाकू व्यक्ति को किस कोटि में समझना ! अस्तु.

संघ भेद के सम्बन्ध में श्रीयुत प्रेमी जी के विचार

संघ भेद का सत्यस्वरूप श्रीयुत नाथूराम जी प्रेमी ने जैन हितैषी में जो कुछ लिखा है वह हम यथा तथ्य उद्धृत करते हैं पाठक उसे भलीभांति पढ़ें !

" संसार में जितने धर्म या सम्प्रदाय हैं उनमें स्थापित होने के समय से लेकर अब तक अनेक पंथ, शाखा उपशाखा रूप भेद होगये है और नये नये होते जाते हैं. ऐसा एक भी धर्म नहीं हैं जिसमें एकाधिक भेद या पंथ न हो. ये भेद या पंथ अनेक कारणों से होते हैं. उनमें सबसे मुख्य कारण देश और काल की परिस्थितियाँ है. प्रत्येक धर्म के उपासकों में दो प्रकार की प्रकृतियाँ पाई जाती हैं एक प्रकृति तो ऐसी होती है जो अपने धर्म के विचारों या आचारों के विषय में जरा भी टस से मस नहीं होना चाहती उन्हीं को जोर के साथ पकड़े रहती है और दूसरी प्रकृति देश और काल की बदली हुई परिस्थितियाँ और आवश्यकताओं के अनुसार मूल आचार विचारों में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर लेने में हानि नहीं समझती. बस इन्हीं दोनों प्रकृतियों की खींचतान और रगड़ झगड़ से एक नया सम्प्रदाय या पंथ खड़ा हो जाता है और उस झंडे के नीचे दूसरी प्रकृति के हजारों मनुष्य आकर उसकी जड़ जमा देते हैं पर आगे चलकर यह नया पंथ भी अविभक्त नहीं रहने पाता, सौ दो सौ वर्षों में फिर नई परिस्थितियाँ और आवश्यकताओं के कारण उसमें भी और एक नया भेद जन्म ले लेता है. इस तरह बराबर नये नये सम्प्रदाय और पंथ जन्म लेते रहते हैं.

और मूल धर्म को अनेक मार्गों में विभक्त करने का श्रेय प्राप्त किया करते हैं इस भेद बुद्धि के साथ साथ धर्म के मूल सिद्धान्तों का भी क्रम २ से रूपान्तर होता रहता है पहली और दूसरी दोनों प्रकृति के लोक आपस की खींचा तान में उनको अपने २ पक्ष के अनुसार बनाने में लगे रहते हैं और इस कारण उनमें कुछ न कुछ, विकृति आये बिना नहीं रहती. पुराना साहित्य जीर्ण शीर्ण दुर्लभ्य व अलभ्य होता रहता है. उसके स्थान में नया साहित्य बनता रहता है और नया पुराने का अनुधावन करने वाला होने पर भी कुछ न कुछ विकृत अवश्य हो जाता है. इस तरह जब हजारों वर्ष बीत जाते हैं तब विद्वान् ऐसे भी होते हैं जो इस विकृत रूप को संशोधित करने की आवश्यकता समझते हैं और धर्म की मूल प्रकृति का अध्ययन करके तथा प्राचीन ग्रन्थों को प्राप्त करके उनके सहारे धर्म के उसी प्राचीन स्वरूप को फिर से प्रकट करने का प्रयत्न करते हैं परन्तु उसे सर्व साधारण गता-नुगतिक नहीं मानते और इस कारण जो लोग उन्हें मानने लगते हैं उनका फिर एक जुदा सम्प्रदाय बन जाता है. इस तरह के प्रयत्न बारबार हुआ करते हैं और प्रत्येक एकबार वे सिवाय इसके कि एक नये सम्प्रदाय की नींव डाल जावें, सबको अनुयायी नहीं बना सकते. इस प्रकार के प्रयत्नों से सब से बड़ा लाभ यह होता है कि प्रायः प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने धर्म के मूल और प्राचीन सिद्धान्तों से बहुत दूर नहीं भटकने पाते उनके करीब २ ही बने रहते हैं. फिर भी यह नहीं कहा जा सकता इस प्रकार के प्रयत्नों से उत्पन्न हुआ कोई सम्प्रदाय अपने धर्म के मूल स्वरूप

भूल जाते हैं. किसी २ प्राचीन पुस्तक के पत्र अवश्य ही उनकी स्मृति बनाए रखते हैं, न जाने ऐसे कितनेक सम्प्रदाय अब तक इस पृथ्वी पर जन्म लेकर नाम शेष होचुके हैं. संसार में साम्य और मैत्री भाव के परम प्रचारक जैन धर्म में भी अब तक अनेक सम्प्रदाय और पंथों की सृष्टी हो चुकी है जिनमें से बहुतों का अस्तित्व तो अब तक बना हुवा है, और बहुत से काल के गाल में समा चुके है" (जै० हि० भाग १४ वां अं० ४ पृ० ९७।९८)

इतिहास के प्रेमी उदार मतवादी नाथूराम जी दिगम्बर जैन के उपरोक्त विचार कितने विशद है और पं० अजितकुमार जी के विचार कितने संकुचित हैं यह इन दोनों के लेखों से पाठक भली भाँति समझ सकते है, तथापि हम इतना बतला देना चाहते हैं कि भद्रबाहु की दन्तकथा कितनी दुराग्रह के साथ लिखी गई है.

हम तो सप्रमाण इस बात को मानते हैं कि दोनों सम्प्रदाय सदा से प्रथक् है और दोनों ही जैन धर्मानुकूल हैं. न कोई एक दूसरे की शाखा है न कोई अर्वाचीन है, हमारी इस बातकी पुष्टि में पं० हीरालाल जी जैन प्रोफेसर का भी मत यहां उध्दृत करके बतलाते हैं जो इस कथन के लिए पर्याप्त है---

" दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थों में कई बारीकियों में मत-भेद है पर इन भेदों से ही मूल बातों की पुष्टि होती है, क्योंकि उनसे यह सिद्ध होता है कि एकमत दूसरे मत की नकल मात्र

नहीं हैं, य मूल बातें दोनों के ग्रंथों में प्राचीनकाल से चली आती है " (जै० शि० सं० पृष्ठ ६७).

प्रेमी जी के और प्रोफेसर हीरालाल जी के उपरोक्त अव-तरण क्या बतला रहे हैं!

कुछ विचारणीय प्रश्न.

रत्ननंदी कृत भद्रबाहु चरित्र परसे वर्तमान के दिगम्बर लेखक बहुत हठपूर्वक उस चरित्र को सत्य करने को,–इतिहासिक रूप देने का प्रयत्न कर रहे हैं उन्हें निम्न लिखित बातोंका अवश्य विचार करना चाहिए.

१–चंद्रगुप्त मौर्य के और श्रुत केवली भद्रबाहु के समय के संबंध में दिगंबर पट्टावली ग्रंथों में और इतिहास के ग्रंथों में परस्पर विरोध है एवं ६७ वर्षोंका अन्तर पडता है इसलिए चन्द्रगुप्त ने भद्रबाहु से दीक्षा ली यह कैसे माना जासकता है ?

२–श्रु. भद्रबाहु ने भाद्रपद (उज्जयिनी) में ही देह त्याग किया इस प्रकार हरिषेणाचार्य कहते हैं तब तो बेलगुला जानेकी बात भी असत्य ठहर जाती है ? और बेलगुला के शिला-लेखों में भी भद्रबाहु का चन्द्रगिरि पर जानेका किसी भी शिलालेख में उल्लेख नहीं है.

३–बारा वर्षीय दुर्भिक्ष एक बारही नहीं किन्तु तीन बार मगध में पडचुका है. पहला दुर्भिक्ष महावीर से दुसरी सदी में

पडा है दुसरा वीरात् छटवी सदी में-स्कंदिलाचार्य और वज्र स्वामी के समय में और तीसरा दसवी सदी में पडा है. इसके लिए परिशिष्ट पर्व अष्टम सर्ग श्लोक १९३ और नवम सर्ग श्लोक ५५ से ५८ तथा नन्दी सूत्र चूर्णी और समयसुंदर का समाचारी शतक साक्षी है किन्तु मालव प्रांत में एक भी दुर्भिक्ष नहीं पडा.

४–दुसरा गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त उज्जयिनी में हुआ है जिसका समय इस्वी सन ३७५ है. एवं दिगम्बर सम्प्रदाय में दोतीन भद्रबाहु भी हुवे हैं-इसलिए यह संभव है कि–कोई गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त और द्वितीय भद्रबाहु की कथा को मौर्य और श्रुतकेवली की कथा मानकर भूल से लिखडाला हो!

अतः उपरोक्त चार प्रश्नों का निर्णय हो जाने से रत्ननन्दीकृत भद्रबाहु के चरित्र का महत्व क्या है? यह स्पष्ट हो सकता है क्योंकि भद्रबहु भी अनेक हुए हैं और चंद्रगुप्त भी कई हुए है और बारा वर्षीय दुर्भिक्ष भी महावीर स्वामी से एक हजार वर्ष के भीतर तीन बार मगध में पडे हैं. परन्तु मालव प्रांत में दुर्भिक्ष पडने का कोई प्रमाण नहीं है. और यों कहा भी जाता है कि–मालव देश में दुर्भिक्ष पडता ही नहीं. इसलिए उपरोक्त सब प्रश्नों का ऐतिहासिक दृष्ट्या संशोधन होकर यह कलहाग्नि मिट जाना चाहिए.

श्वेताम्बर और दिगाम्बर पृथक् कबहुए?

इस बात का निष्पक्ष दृष्टिसे विचार किया जाय तो यह

कहना ही होगा कि–यह दोनों मार्ग सदा से भिन्न होने पर भी एक है. जैन–दर्शन नित्यानित्य पदार्थों का समर्थन करता है. इस अपेक्षा से मूल पदार्थ क़ायम रह कर पर्याय से परिवर्तन होता रहता है. यह परिवर्तन व्यवहार का है. और उपयोगी भी है. मूल वस्तु को कायम रखकर संजोगानुसार परिवर्तन जैन दर्शन को मान्य है. जैन दर्शन का यह सिद्धान्त तत्ववाद और आचारवाद में सर्वव्यापी होने से इस का नाम "अनेकान्त दर्शन" माना जाता है. प्रकृति की रचना में यह विशिष्टता है कि–वज्र के समान घन कठिन और गुरुतर पदार्थ संजोग पाकर मृदु–और तरल बन जाते हैं और मृदु–तरल पदार्थ वज्र-वत् घन कठिन और गुरुतर बन जाते हैं इस बात को रसायन शास्त्री आज भी प्रत्यक्ष करा सकते है. अतः महावीर के समय के आचार विचारों में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन हो इस में आश्चर्य ही क्या है? परिवर्तन क्रम जितना अनिर्वार्य है उतना उपयोगी भी है. अब हमें यहांपर यह विचार करना है कि–महावीर स्वामी के पहले और विद्यमान में तथा पश्चात् क्या क्या परिवर्तन हुआ? पता चलता है कि–महावीर के पहले पार्श्वापत्य थे. वे नाना वर्ण के जैसे मिलें वैसे ही वस्त्र पहेन लेते थे इसका कारण यह था कि वे ऋजु और प्राज्ञ थे. उन को जहां दोष दीखताथा उस को वे शट त्याग देते थे. और निर्दोष व्यवहार में चलते थे. उस समय यह हठ नहीं था कि–नग्न ही रहना या श्वेतही वस्त्र पहेनना अथवा बहुमूल्य वस्त्र रखना या निर्मूल्य! उन्हें जैसा प्राशुक मिल जाता या वैसाही मूर्च्छा रहित

लेते थे. महावीर की विद्यमानता में भी पार्श्वापत्यों का महाकाय संघ था, जिस में साधु और साध्विएँ भी थी. भगवत्यादि जैनागमों में उन का अनेक स्थानोंपर वर्णन हैं. छद्मस्थावस्था में महावीर स्वामी लाट देश में घूम रहे थे उस समय वहां के लोग महावीर को चोर-डाकू समझ कर मारपीटादि उपसर्ग करने लगे उस समय पार्श्वापत्या जयन्ती नामकी साध्वीने बीच में पड़कर-समझा बूझा कर छुड़वाया था और कहाथा कि—ये चोर—डाकू नहीं है किन्तु आर्य है. ऐसे अनेक वर्णनों परसे इस बातका पता चलता है कि—महावीर के समय में भी पार्श्वपत्योंका महावीर से पृथक् बड़ा संघ था. और वे विविध वर्ण के बहुमूल्यवान् मूर्च्छा रहित वस्त्र पहेनते थे. दिगम्बर ग्रंथों में भी इसबातकी पुष्टी के प्रमाण मिलते हैं दिगंबराचार्य देवसेन दर्शनसार ग्रंथ में लिखते हैं कि—

सिरि पासनाह तित्थे, सरऊ तीरे पलास णरत्थे ।
पिहि आसवस्स सीहे, महासुद्धो—बुद्ध कीत्ति मुणी
रत्तं वत्थं धरित्ता, पवट्टियं तेण एयत्तं ।
(दर्शन सार)

अर्थात्—पार्श्वनाथ के तीर्थ (संघ) में बुद्धकीर्ति नाम का जैन साधु पलाश नगर के बाहर सरयू नदी के तट पर तपश्चर्या करता था. वह महा बुद्धिमान था और लाल रंगके वस्त्र पहनता था. उसने बुद्ध मार्ग प्रवर्तित किया । इसी प्रकार अमित-गति-धर्म परीक्षा नामक संस्कृतग्रन्थ में लिखते हैं कि—

रुष्टः श्री वीरनाथस्य तपस्वी मौडिलायनः ।
शिष्य श्री पार्श्वनाथस्य विदधे बुद्ध दर्शनम् ।
(धर्म परीक्षा अ० १८ श्लोक ६८)

अर्थात् पार्श्वनाथ का शिष्य मौडीलायन तपस्वी महावीर से रुष्ट होकर बुद्ध दर्शन धारण किया.

ऊपर के दो अवतरणों से इस बात को पुष्टि मिलती है कि—पार्श्वनाथ के शिष्य लाल रंगके वस्त्र भी पहनते थे और महावीर से कुछ भी सम्बन्ध तक नहीं रखते थे और कितनेक रुष्ट भी रहते थे, परन्तु जैन सूत्रों से यह भी पत्ता चलता है कि महावीर केवल ज्ञानी होजाने पर अनेक पार्श्वापत्य महावीर से आकर मिले हैं. और प्रश्नोत्तर हो जाने के पश्चात् महावीर के शासन में मिल भी गये हैं और कितनेक स्वतंत्र पार्श्वापत्य भी रहे हैं. इस प्रकार की घटना एक समय में नहीं अनेकवार हुई हैं. पार्श्वापत्य श्री केशीकुमार गणधर का और गौतम इन्द्रभूति का परस्पर पश्नोत्तर होने का वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र में आया हुआ है. श्री पारवनाथ के शुभदत्त गणधर, उसके हरिदत्त, आर्य समुद्र, स्वामी प्रभसूर्य, और केशीकुमार इन्हीं से उकेश गच्छ की परंपरा चली. जिनकी परंपरा में रत्नप्रभसूरि नाम के पार्श्वापित्य जैनाचार्य ने क्षत्रियों से ओसवाल जैन बनाकर ओसवंश की स्थापना की. इस उकेश गच्छ के पार्श्वापत्य जैन साधु-यति और श्रावक समुदाय सहस्रों की संख्या में आज भी विद्यमान हैं और वे आज भी पार्श्वापत्य ही कहलाते हैं. उनकी परंपरा पट्टावली का महावीर

की परंपरा पट्टावली से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और आज भी भिन्न है. इतना लिखने का प्रयोजन यह है कि–महावीर के पहिले भी जैन साधु वस्त्र रखते थे यह; दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय के ग्रंथों में स्पष्ट उल्लेख है. मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि स्थविर कल्प और जिनकल्प यह दोनों मार्ग भिन्न भिन्न हैं और सदा से हैं, महावीर के पहले से हैं और जैन दर्शन सम्मत हैं. दि. भ. प्रभाचंद्र लाल रंगके वस्त्र धारण करने के कारण रक्ताम्बर प्रभाचंद्रके नामसे प्रसिद्ध हुए है और दिगंबरों के धर्म गुरु भट्टारक प्रायः लाल रंगके वस्त्र धारण आज भी करते हैं यह परिपाटी वुद्ध कीर्तिसे चली है.

प्रथम के श्रुत केवलियों के समय से महावीर के संघ में भेद.

महावीर भगवान् के मुक्ति गमन के पश्चात् आर्य सुधर्मा और आर्य जम्बू दो पिढ़ी तक केवल ज्ञानियों की परंपरा रही, यह बात दोनों सम्प्रदायों को मान्य है. उसके बाद दस वस्तु विच्छेद होगई केवल ज्ञान, मनः पर्यवज्ञान, परमावधि, पुलाकलब्धि, अहारक शरीर क्षपक श्रेणी जिनकल्प और संयमत्रिक (परिहारविशुद्ध, यथाख्यात और सूक्ष्म सम्पराय) इसके बाद श्रुतज्ञानियों का शासन रहा, उस समय श्रुतज्ञानियों में परस्पर मतभेद हो गया. महावीर के अनुयायी श्रुतज्ञानियों में पार्श्वापत्यों का सम्मिश्रण रहा, वे उदार मतवादी रहे और जिनमें केवल महावीर के अनुयायीही थे और अल्प संख्यक थे वे कट्टर पृथक्

परन्तु बीमार हो, चल फिर सकता न हो शक्तिहीन हो उसको पात्र के सिवाय नहीं चल सकता, क्योंकि उसके पास पात्र होनेसे दूसरा साधु उसके लिए उस पात्र में उसके उचित आहार लाकर दे सकता है परन्तु जो साधु वस्त्र-पात्र के विना ही निर्दोष संयम पाल सकता है उसके लिए वस्त्र-पात्र रखने की कोई आवश्यकता नहीं है. विक्रम की ७-८ वीं शताब्दी तक साधुओं के वर्ताव में यह बात थी" (जैन साहित्य में विकार पुस्तक पृ० ४६-४७ पर)

लिये साधन के भेदों में विरोध की गंध तक नहीं थी, यह गंध तो विक्रम की दशवीं शताब्दी के लगभग कषायों की धधकती अग्नि से चली यह हम पीछे बतला चुके हैं. इसके पहले तो कोई निराहारी रह कर शरीर त्याग कर सुगति प्राप्त करता था, तो कोई नित्य भोजन कर आत्म ध्यान करता था, कोई नग्न रह कर कठोर तप जप कर कर्मों का नाश करता था तो कोई वस्त्रपात्र रखकर स्वाध्याय द्वारा ज्ञानार्जन कर रागद्वेष रूपी शत्रुओं को पराजय करता था।

मतलब आत्मा की शांति के लिये विविध मार्गों का यथा रुचि अवलम्बन कर अविरोध भाव से आत्म चिंतन किया जाता था.

वस्त्र-पात्र रखने के संबन्ध में पं० बहेचरदास अपनी वक्तृता में कहते हैं—"साधुओं को विशेषतः वन में रहने के कारण दंशमंशादि मच्छरों का उपद्रव विशेष होना संभव है इसलिए जो साधु इतना दुःख सहन करने की सामर्थ्य वाला न हो और वस्त्र न रखें तो संयम से मुख मोड़ना पड़े, एवं लज्जापर जिन्होंने जय प्राप्त किया नहीं ऐसों को वस्त्र रखने की आवश्यकता है. एवं पात्र रखना भी संयम की रक्षा है. आहार के समय हाथ में लेकर जाने में अनेक आपत्तियाँ हैं भोजन स्निग्ध-उष्ण और तरल होगा तो हाथ जल जायगा, भोजन का कुछ भाग नीचे गिरेगा जिससे जीवहिंसा होना संभव है. हाँ सिर्फ रूखा सूखा चने आदि भुना हुआ धान्य ही खाया जा सकता है

परन्तु बीमार हो, चल फिर सकता न हो शक्तिहीन हो उसको पात्र के सिवाय नहीं चल सकता, क्योंकि उसके पास पात्र होनेसे दूसरा साधु उसके लिए उस पात्र में उसके उचित आहार लाकर दे सकता है परन्तु जो साधु वस्त्र-पात्र के बिना ही निर्दोष संयम पाल सकता है उसके लिए वस्त्र-पात्र रखने की कोई आवश्यकता नहीं है. विक्रम की ७-८ वीं शताब्दी तक साधुओं के वर्ताव में यह बात थी " (जैन साहित्य में विकार पुस्तक पृ० ४६-४७ पर)

इसके आगे पंडित बहेचरदासजी कहते हैं कि—

" श्वेताम्बरों के प्रमाणिक ग्रंथों में वस्त्र-पात्र के लिये विशेष आग्रह नहीं है, या यों भी लिखा नहीं है कि–इसके सिवाय संयम ही नहीं है या मुक्ति नहीं है. यहां तो ऐसा लिखा है कि जो साधु वस्त्र-पात्र की सहायता बिना निर्दोष संयम पाल सकता है उसके लिए वस्त्र-पात्र की जरूरत नहीं और जो साधु वस्त्र-पात्र की सहायता बिना संयम निर्वाह नहीं कर सकता हो उसको वस्त्र-पात्र रखने में कोई दोष नहीं है क्योंकि दोनों का ध्येय संयम है–आत्म श्रेय है, वस्त्र-पात्र रखने वालों ने वस्त्र-पात्रों के गुलाम बनना नहीं और नग्न रहने वालों ने " नग्नत्व " के गुलाम बनना नहीं अर्थात् किसी भी परिस्थिती के दास न बनकर-किसी भी प्रकार का दुराग्रह न कर आवश्यकतानुसार उपाधिएं कम हों ऐसा प्रयत्न करते हुए चले जाना चाहिए। इसी मार्ग का वर्द्धमान ने आचरण

किया है और आर्ष ग्रंन्थों में इसी बात की नोंध है इसी मार्ग में त्याग है आत्म स्वातंत्र्य है और घरबार छोड़ने का यही सार है."

"मैं मानता हूं ऊपर कहा गया है इससे अधिक कुछ भी कहने का दिगम्बर ग्रंथों को आवश्यकता नहीं रहने पाती, क्या ? यह माना जा सकता है कि साधु बीमार हो, आसन्न मृत्यु की शय्या पर सोया हुआ हो तो भी उसको एक वस्त्र के टुकड़े तक को भी छूना नहीं ! मलोत्सर्गादिक के लिए मट्टी का ठीकरा तक रखना नहीं ? उग्र संयम के पोषक दिगम्बर ग्रंन्थों ने साधु को आहार करने की जैसी आज्ञा दी है उसी प्रकार संयम रक्षार्थ वस्त्र-पात्र की भी छूट देना चाहिए. यदि उन ग्रंन्थों में इस प्रकार का विधान न हो तो मैं मानता हूं कि उन २ ग्रंन्थों के रचने वालों की कंजूसी है। साधकों के लिए अपवाद की एकाद बारी रक्खे सिवा उनका निर्वाह हो सके व चला सके ऐसा बन ही नहीं सकता.समता गुम हो जाने तक नौबत गुजरे तब उसको कायम रखने के हेतु, औषधवत् वस्त्र-पात्र रखने को आचार शास्त्र में मनाई हो नहीं सकती, अर्थात् वस्त्र-पात्र का एकान्त निषेध किसी रीति से भी नहीं कर सकते, वर्द्धमान के नामपर चलते हुए प्रवचन में निर्दोष बाह्य सामग्री के लिए कहीं भी एकान्त कहना असंभवित है कारण उस प्रवचन का नाम ही अनेकान्त दर्शन है. श्वेतांबर दिगम्बर की भीत केवल आग्रह के पाये पर रची गई है (जै०"सा० वि० पृष्ट ५६ से ५९ तक).

पंडित बहेचरदास जी के उपरोक्त अवतरणों से यह बात

विशेष स्पष्ट हो जाती है कि दोनों मार्ग जैन सिद्धान्त के अनुकूल हैं, भिन्न होने पर भी अभिन्न है. अतः जैन दर्शन को एकान्त दुराग्रह सम्मत नहीं है.

अंग-उपांगादि जैनागमों की उपादेयता

अंगो-पांगादि जैनागम ग्रंथों की रचना, गणधर, पूर्वधर और श्रुतधरों द्वारा हुई यह निर्विवाद बात है. वर्तमान में अंगोपाँगादि नाम से जैनागम विद्यमान हैं उनको श्वेतांबर पवित्रातिपवित्र और मुख्यतः उन्हींको प्रमाण भूत मानकर चलते हैं, परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय उन्हें मानने को अस्वीकार हैं और यह उन पवित्र ग्रन्थों पर आक्षेप है कि "असली अंगादि शास्त्र विच्छेद होगये और श्वेतांबरों ने उन्हीं नाम वाले अंगशास्त्र नये बनाडाले इसलिए वर्तमान में प्रचलित अंग शास्त्र हैं वह आधुनिक है इससे हमारे दिगंबर ग्रंथ प्राचीन हैं" इस आक्षेप में कितनी सत्यता रही हुई है इसका निरीक्षण करना जरूरी है.

वर्तमान समय में जो अंगोपांगादि जैनागम विद्यमान हैं वह इतिहास की दृष्टि से अनेक परिवर्तनों से परिवर्तित होता हुआ आया है. जिस समय अंग और पूर्वों का ज्ञान कंठस्थथा तब छोटे २ वाक्यों में गंभीरार्थ के रूप में रहा हुआ था, इसलिये उसका नाम सूत्र कहा जाता था "सूचनात्सूत्रम्" की व्युत्पत्ति यह दर्शा रही है कि- गुरुओं की ओर से शिष्यों को संक्षिप्त में सूचनाएं दी जाती थीं उन आज्ञाओं के संग्रहित वाक्य समुदायों

का नाम सूत्र माना जाता रहा और गणधरों के शिष्य स्थविरों ने उन सूत्रों को कंठस्थ रखे थे, यहांतक लिपि बंद नहीं थे और अर्ध मागधी भाषा में ही वे सूत्र कायम रहे, परन्तु वे सूत्र जब शिष्य परम्परा में उत्तरोत्तर प्रचलित होते गये और शिष्य परम्परा भिन्न २ देशों में भ्रमण करने वाली होने से मूल सूत्रों की भाषा में स्वाभाविकरीत्या परिवर्तन होने लगा और मागधी अर्ध मागधी शौरसेनी, अपभ्रंशादि अनेक प्राचीन समप्राकृत भाषाओं का सूत्रों में संमिश्रण होगया, साधुओं का मगधदेश छोड़कर अन्यान्य देशों में जाने का एक विशेष कारण यह भी हुआ कि महावीर से दूसरी शताब्दी में मगध में द्वादसवर्षीय घोर दुर्भिक्ष पड़ा इसलिए साधु संघ छिन्न भिन्न और तितर बितर होगया, कई अनशन कर परलोक चले गये, कई क्षुधार्त दशा में सूत्रों का पाठ तक कर न सके और भूल गये इत्यादि कारणों से कंठाग्र रही हुई विद्या कुछ विस्मृत भी होगई, और मनुष्यों की दुर्दशा के साथ श्रुत की भी दुर्दशा होगई, पुनः सुभिक्ष होनेपर पटना (पाटली पुत्र) में साधु संघ एकत्रित हुआ और जिस मुनि को जितना याद था उतना संग्रह कर बडी मुशकिल से एकादशांग का संग्रह हुआ और जिसमें १४ पूर्व का ज्ञान भरा हुआ था वह दृष्टिवाद नामक द्वादशम अंगशास्त्र को प्रथम द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष ने नष्ट कर डाला परन्तु अवशेष ज्ञान भी उस स्थिति में ३-४ सो वर्ष टिका रहा, पश्चात महावीर के छठे सैके में फिर वैसाही भयंकर द्वादस वर्षीय दुर्भिक्ष मगध में पड़ा, यह समय स्कंदिलाचार्य और वज्र स्वामी के निकट

वर्ति था, इस दुर्भिक्ष की भयंकरता का नन्दीचूर्णी में उल्लेख है कि इस भयंकर दुष्काल ने तो इतनी भयंकरता बतला दी कि-अन्न के लिए भ्रमण करते हुए साधुओं को इतनी बाधाऐं उपस्थित होती थी कि जिससे श्रुत का मनन चिन्तवन तक करना कठिन हो पड़ा था, इसलिए'प्रथम दुर्भिक्ष से बचा हुवा अवशेष भाग एकादशांगादि सूत्रों को इस द्वितीय द्वादसवर्षीय दुर्भिक्ष ने छिन्न-भिन्न कर डाला. एतदर्थ सुभिक्ष होने पर श्री स्कंदिलाचार्य ने अवशेष बचे हुए श्रुत का, आचार्य उपाध्याय मुनियों के समस्त संघ को एकत्रितकर शूरसेन देश के मथुरा नगर में उद्धार किया. उस समय शौर सेनी भाषा का श्रुत में बहुतसा मिश्रण होगया,और पाठान्तर भी बहुत से बढ़ गये इस समय के श्रुत संकलन को माथुरी वाचना कही जाती है. इस समय इस बृहत्साधु परिषद् में समस्त जैन सम्प्रदायों के साधु एकत्रित हुए थे, दिगम्बर आचार्य धरसेन पुष्पदन्त भूतबली आदि का लगभग यही समय दिगम्बर ग्रंथ मानते हैं और दि० ग्रंथों में यह भी उल्लेख है कि महावीर से ६०० वर्षों के बाद पुष्पदन्त भूतबली प्रभृति ने आगमों का उद्धार या लेखन किया इस पर से यह स्पष्ट है कि यह बृहत परिषद् स्कंदिलाचार्य की अध्यक्षता में हुई थी. संभव है इसी के सम्बन्ध का ही दि० ग्रंथों में उल्लेख हो। एवं महावीर के दसवें सैके में फिर तिसरी बार द्वादसवर्षीय घोर दुर्भिक्ष ने आकर अड्डा जमा लिया इस समय तो बहुत से बहुश्रुतों का नाश कर डाला. श्रुतकी छिन्न भिन्न दशा होगई, सुभिक्ष होजाने पर फिर साधु संघ वल्लभी पुरी में एकत्रित हुआ और रहा सहा न्यायिक, त्रुटिक अत्रुटित आगम

के पाठों को क्रमवार संकलन कर श्री देवर्धिगणीक्षमा श्रमण ने श्रुतभक्ति वश अनुसंधान कर कंठाग्र श्रुत को पुस्तका रूढ कर डाला इसे वल्लभी वाचना कहते हैं (समाचारी शतक समय सुन्दर का) इस समय भी दिगम्बर आये थे, और इस सभा के बाद जैनागमों का धारसाहक श्वेतांबरों के आधीन कर उन आचार्यों ने दिगम्बर सम्प्रदाय के लिए नूतन ग्रंथों की रचना की. इस समय के पश्चात के बने हुए आचार्य प्रणित ग्रंथ ही दि० सम्प्रदाय में माने जाते हैं.

इसके पहले का एक भी ग्रन्थ दि० सम्प्रदाय में नहीं है. यहां कहने का सार यह है कि अनेक परिवर्तनों से परिवर्तित होकर जो कुछ रहा वही यथा प्रयत्न सुरक्षित भाग स्वीकार लिया गया. प्रथमांग आचारांग में महा प्रज्ञा अध्ययन सातमाँ नष्ट होगया, उसमें का कुछ भी भाग अवशेष नहीं रहा जिसमें अनेक उपयोगी विषय एवं विद्याएँ थीं, आज उस स्थानपर आचारांग में लिखा जाता है यह सातवां अध्ययन अप्राप्य है. इस प्रकार आगमों का अधिकांश भाग नष्ट होगया हुआ है, और बहुत कम रहा है जिसका अस्तित्व श्वेताम्बरों ने यथा तथ्य सुरक्षित रक्खा है. श्वेताम्बरों ने यह दावा कभी नहीं किया कि गणधर पूर्वधर श्रुतधरों के समय जितना आगम हमारे पास है ! यही श्वेताम्बर ग्रंथों की सरलता है यहाँ कोई यों कहे कि अधूरा है ! परंतु आप्त वचन आज भी जीस प्रमाण में विद्यमान है वह भी आत्मार्थियों के लिए काफी है। और श्रुतरत्नको सम्हाल रखना चाहिए

उनसे बढ़कर दिगम्बर गंथों में कुछ भी नहीं है. उन्हीं की परि-मार्जित आवृत्ति कर दिगम्बर ग्रंथ बनाए गये हैं. यही अंग और आगम शास्त्रों का इतिहास है. इन आगमों की आर्षता के संबन्ध में बौद्धों के पीटक ग्रंन्थों के आधार मिलते हैं, आजीवक मतका प्रचारक गौशालक का इतिहास अंग शास्त्रों में मिलता है. इत्यादि अनेक आगमों का उल्लेख महावीर के समय की घटनाओं का भान कराता है यही आर्ष होने का दृढ़ प्रमाण है. श्वेताम्बरों को जितना प्राप्त हुआ उतना ले लिया, नवीन कुछ भी नहीं मिलाया और न कोई बात दिगम्बर साम्प्रदाय के विरुद्ध है और न कोई बात मिलादी है इस बात को विशेष रूप से देखना हो तो केनकर का मराठी ज्ञान कोष देख सकते हैं.

उपरोक्त कथन की पुष्टि में हम पं. बेहेचरदास के निष्पक्ष आलोचक लेख को नीचे उद्धृत करते हैं इस लेख को पाठक अवश्य पढ़ें—

"आर्य स्कंदिलाचार्य ने समस्त श्रुतधरों को मथुरा में बुलाये; आये हुए श्रुतधरों में नरम गरम दल के सभी थे, जिन २ मुनियों को जितना कंठाग्र था वह सब पत्रों पर उतारने लगे. परंतु इसी में मतभेद हुआ, निर्ग्रंथों के आचारों के लिय क्या लिखना ? मताग्रही वर्ग बोला केवल "नग्न" ही लिखना चाहिए दूसरे बोले वस्त्र पात्र का भी विधान करना चाहिये ? मतभेद होने पर भी दीर्घदर्शी स्कंदिलाचार्य ने और ततः पश्चात उसी प्रकार

देवर्धिगणी क्षमाश्रमण ने. सूत्रों की संकलना में एकान्त नग्न रहने का या एकान्त वस्त्र रखने का विधान नहीं किया यथायोग्य दोनों पक्षों को समझोत न्याय दिया गया. माथुरी वाचना के मूल पुरुष (स्कंदिलाचार्य) और वल्लभी वाचना के मूल पुरुष (देवर्धिगणि) इन दोनों महात्माओं को मैं हृदय पूर्वक धन्यवाद देता हूं किसी के मताग्रह में न फंसकर आचार प्रधान आचारांग सूत्र में आचारों की संकलना करते साधारणतया " भिक्षु व भिक्षुणी " के आचार दर्शाये हैं उसमें दिगंबर व श्वेताम्बर आदि के नाम तक नहीं है, धन्य हैं अनाग्रही पुरुषों को ! साधु साध्वी के आचारों को यदि कोई अनाग्रही पढ़ेगा तो उसे मेरे कथन की सत्यता प्रतीत हो जायगी. माथुरी वाचना के समय दो पक्ष हो गये थे. यही समय वि. सं. ६०९ का है यही समय दिगंबरोत्पत्ति का (जिन भद्रगणी हरिभद्रसूरि आदिने) दर्शाया है यह बात भी मेरे कथन का समर्थन करती है " (पं० श्वे० जै० सा० वि० पृष्ठ ८०)

पंडीत जी ने अपने कथन के समर्थन में इस निबंध में आचारांग सूत्र के १६ उतारे उद्धृत किए हैं हम उनका यह निबंध पढ़ने का निष्पक्ष वर्ग को अनुरोध करते हैं. और जो यह कहते हैं रंचमात्र परिग्रह (वस्त्र) रखने से मुक्ति अटक जाती है या मुनि नहीं हो सकता. वह यदि यह एकान्त पक्ष छोड़कर पूरा विचार करें तो यह कलह मिट सकता है. वियमान आगम शास्त्र आचारांगादि को यह एकान्त दुराग्रह सम्मत नहीं है यह आगम शास्त्र जैनमात्र के लिए है किसी सम्प्रदायके ग्रंथ नहीं है.

साम्प्रदायिक ग्रंथों की रचना कब हुई ?

अंगोपांगादि आगम ग्रंथ साम्प्रदायिक नहीं है. किन्तु गणधर-पूर्व धरोंकी कृतिका अवशेष भाग है. इसलिए जैन दर्शन के मूल ग्रंथ हैं–पवित्र ग्रंथ हैं. किसी विशेष सम्प्रदाय के नहीं है. इन की प्राचीनता के संबंध में बौद्धों के पीटक ग्रंथों में, तथा आजीवक मत प्रचारक गोशालक का इतिहास अंग शास्त्रों में मिलता है. एवं महावीर स्वामी के समय की सच्ची ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन आगम ग्रंथों में मिलता है. यही आगमों की प्राचीनता के दृढ प्रमाण हैं. इनका ग्रंथस्थ हो जाने के पश्चात् साम्प्रदायिक ग्रंथों की रचना हुई. दोनों सम्प्रदाय के महान् आचार्यों ने अपने अपने मंतव्यानुसार ग्रंथ-रचना कर के अपने २ सम्प्रदाय को पुष्ट करना प्रारंभ किया. श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के आचार्य आगमों के आधार को त्याग सके नहीं किन्तु कट्टर दिगम्बराचार्यों को तो आगमों के विरुद्ध बंड उठाना था इस लिए उन्हों ने नये २ स्वतंत्र ग्रंथोंकी महत्कायमें रचना कर के वस्त्रत्याग के संबंध में बडा जोर दिया और साधुके २७ मूलगुणों के साथ साथ "वस्त्रत्याग नामक २८ वाँ मूलगुण" साधु का मान लेना प्रारंभ किया. इस घटना का प्रारंभ काल विक्रम की (६) छठीं या (७) सातवीं शताब्दी का है. इस समय से पहले का एक भी ग्रंथ दिगम्बर सम्प्रदाय में नहीं है और इस समय के पहले के माने जाते हैं वे अप्राप्य हैं अर्थात् हैहीं नहीं. ।

कुन्दकुन्दाचार्य का समय.

दिगंबर सम्प्रदाय के मूलभूत पुरुष कुन्दकुन्दाचार्य माने जाते हैं. इनके रचित ग्रंथ भाषा की दृष्टि से विक्रम की छट्ठी या सातवीं शताब्दी के प्रतीत होते हैं. यद्यपि कट्टर-पुराण मतवादी दिगम्बर भाई कुन्दकुन्द का समय विक्रम की दुसरी शताब्दी का पूर्वार्ध मानते हैं परंतु इस बातको इतिहास स्वीकार नहीं करता. क्यों कि कुन्दकुन्द के ग्रंथोंपर अमृतचन्द्रसूरीकी टीका है और अमृतचन्द्र सूरि का समय विक्रम की ११ वीं शताब्दी है इस लिए एक तो शंका का स्थान यह है कि-कुन्दकुन्द के और अमृतचन्द्रके पौराणिक मतानुसार एक हजार वर्षों का अंतर है तो क्या ? एक हजार वर्ष में कुन्दकुन्द के ग्रंथोंपर टीकाकार कोई दिगंबर सम्प्रदाय में हुआ ही नहीं ? इतने समय तक क्या टीका के आधार बिनाही स्वाध्याय किया जाता था ? दुसरी बात यह है कि-दिगम्बराचार्य षट्भाषा कवि चक्रवर्ति श्रीभूषणसूरिने प्रतिबोध चिन्तामणी नामके संस्कृत ग्रंथके आरंभ में कुन्दकुन्दाचार्य के संबंध में एक कथा लिखी है उस कथा में यह वर्णन दियाहै कि-" पद्म नन्दी हिंसक कापालिक था, इसी कापालिक का अपर नाम कुंदकुंद चक्रवर्ति बतलाते हैं एवं मूल संघ के उत्पादक कुन्दकुन्द का समय वि. सं. ७५३ का लिखते हैं. और अनंत कीर्ति का शिष्य पद्मनन्दी (कुन्दकुन्द) मयूर पिच्छ इसलिए रखने लगा कि-हिंसक कापालिक हाथमे मयूर पिच्छ और गलेमें शिवलिंग पहेनता था. इसलिए आचार्य ने उसकी मयूर शृंगी संज्ञा रखदी " इत्यादि बहोत लम्बी चौडी

कथा लिखी है और यह कथा "जैन गॅजट" के १४ वें वर्ष के २५ में अंक में छपचुकी है! इस कथा कार के मतानुसार तो कुन्दकुन्द के अस्तित्व का समय वि. सं. ७५३ का और भी इधर आता है. अतएव दुसरी शताब्दि का समय मानना अन्ध विश्वास सा प्रतीत होता है. और इस के लिए कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है. इसके अतिरिक्त दिगम्बर श्रावक हीरालालजी एम्. ए. प्रोफेसर किंग एडवर्ड कॉलेज अमरावती.

आचार्यों की वंशावली

शीर्षक लेखमें लिखते हैं कि–" दुर्भाग्यतः किसी भी लेख में उपर्युक्त श्रुतज्ञानियों और कुन्दकुन्दाचार्य के बीच की पूरी गुरु परम्परा नहीं पाई जाती. इन्द्रनन्दी कृत श्रुतावतार के अनुसार कुन्दकुन्द उन आचार्यों में हुवे हैं जिन्हों ने अंग ज्ञानलोप होने के पश्चात् आगम को पुस्तकारूढ किया" आगे चलकर लिखते हैं कि–

जो भद्रबाहु आदि श्रुत ज्ञानी हो गये हैं उनके नाम मात्र के सिवाय उन के कोई ग्रंथ आदि हमें अब तक प्राप्त नहीं हुवे हैं. कुन्दकुन्दाचार्य के कुछ प्रथम ही जिन पुष्पदन्त भूतबली आदि आचार्यों ने आगमों को पुस्तकारूढ किया उनके भी ग्रंथों का अब कुछ पता नहीं चलता. (जै. शि. सं. पृष्ट १२७-२८-२९)

श्रीयुत् हीरालालजी के ऊपर के दोनों अवतरणों में भी वही ध्वनी है जो पं. बहेचरदास के लेख में है और इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि–श्री. स्कंदिलाचार्य द्वारा आगमों का उद्धार हो जाने के पश्चात् ही पुष्पदन्त-भूतबली और कुन्दकुन्दाचार्य हुए हैं. इसलिए दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रंथों का लेखन काल विक्रम की सातवीं शताब्दी का मान लेना योग्य प्रतीत होता है. यहाँ हमें एक बात प्रोफेसर हीरालालजी से भी कह देना है कि–श्रुतकेवली शिज्जंभवसूरि कृत " दशवैकालिक सूत्र " और श्रु. भद्रबाहु रचित १० निर्युक्ति ग्रंथ विद्यमान हैं जिन ग्रंथों का आप परिशिलन करें फिर अपना मत व्यक्त करें और फिर यह कहे कि–श्रुतकेवलियों के रचित ग्रंथ आज विद्यमान हैं या नहीं ? अस्तु.

कुन्दकुन्द (कुंडकोंड) यह नामभी कनडी भाषा का प्रतीत होता है और कनडी भाषा और लिपी का प्रारंभ काल विक्रम की ६ या ७ वीं सदी है इस परसे कुन्दकुन्दाचार्य का समय भी वि. सं. ७५२ का होना भूषणसूरी नें जो लिखा है वह सत्य प्रतीत होता है.

स्वामी समन्त भद्र का समय.

दिगंबर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रंथ लेखक, स्वामी समन्त भद्र का समय भी विवादास्पद है, पुराण मतवादी कट्टर दिगंबर इनका अस्तित्व विक्रम की दुसरी सदी मानते हैं और गवेषणापूर्ण विचार करनेवाले इतिहास के विद्वान् इन्हें विक्रम के ६ या ७ मे सैके में हुए बतलाते हैं.

विक्रम के समकालीन **सिद्धसेन दिवाकर** नाम के महान् आचार्य हो गये हैं उनका "**सम्मति तर्क**" नाम का न्यायका महान् ग्रंथ पं. बहेचरदास द्वारा सम्पादित होकर प्रसिद्ध हो चुका है उस पर से और शतीशचन्द्र विद्याभूषण एम्. ए. पी. एच. डी. भूतपूर्व प्रिन्सिपाल कलकत्ता के "**क्षपणक**" शीर्षक लेख से यह स्पष्ट हो चुका है कि दिवाकरजी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के अनुयायि थे. [इलाहाबाद की सरस्वति मासिक पत्रिका के भाग १७ खंड २ पृष्ट १३८ पर देखो]

स्वामी समन्त भद्र कृत रत्नकरंड श्रावकाचार सटीक, मुंबई में—माणिक्यचन्द्र दि जैन ग्रंथमाला के नं. २४ पर छपकर प्रकट हो चुका है. इस की प्रस्तावना बाबू जुगल किशोरजी मुख्तार ने कोई २५० पृष्ठों में लिखी है जिसमें कुन्दकुन्द, उमास्वाति और स्वामी समन्तभद्र के संबंध में विविध दृष्टिसे विचार कर अन्त में उन्हों ने अपना स्पष्ट मत प्रकट कर दिया है कि "**इन तिनों के समय में अभी गडबड है कोई निर्णय नहीं**

हुआ " हम बाबूजी की प्रस्तावना के कुछ अवतरण यहां उध्दृत करते हैं—

" श्रीयुत एम्. एस्. रामस्वामी आयंगर एम्. ए. ने अपनी " स्टडीज साउथ इन्डियन् जैनी ज्ञम " नामकी पुस्तक में लिखा है कि-समन्तभद्र उन प्रख्यात लेखकों की श्रेणी में सब से प्रथम थे. जिन्हों ने प्राचीन राष्ट्रकूट राजाओं के समय में महान् प्राधान्य प्राप्त किया है. राष्ट्रकूट वंस इस्वी सन ७५० से आरंभ होकर ९७३ पर समाप्त होता है (समन्तभद्रीय रत्नकरंड प्रस्तावना पृष्ट ११९) भांडारकर महोदय की सूचनानुसार वही शक सं ५५६ (इसी सन ६३४) रविकीर्ति के उक्त शिला लेखका समय है " (र. क. प्र. पृ. १२१)

दिगम्बर पट्टावलियों में गडबड.

" इतना हम जरूर कह सकते हैं कि—आम तौर पर पट्टावलियाँ प्राय: प्रचलित प्रवादों अथवा दंत कथाओं आदि के आधार पर पीछे से लिखी गई है. उनमें प्रमाण वाक्यों तथा युक्तियोंका अभाव है और इसी लिए केवल उन्हीं के आधारपर ऐसे जटिल प्रश्नों का निर्णय नहीं किया जासकता. वे अधिक प्राचीन गुरुओं के क्रम और समय के विषय में प्राय: अपरियाप्त हैं " (रत्न. समय निर्णय पृष्ट ११८)

" इतिहास से वसुनन्दी का समय विक्रम की १२ वीं शताब्दी का मालूम होता है परंतु पट्टावली में ६ टी शताब्दी

(५२५—५३१) दिया है. इस तरह से जाँच करने से बहुत से आचार्योंका समयादि इस पट्टावली में गलत पाया जाता है जिसे विस्तार के साथ दिखला कर यहां इस निबंध को तूल देने की जरूरत नहीं. ऐसी हालत में पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि यह पट्टावली कितनी संदिग्धावस्था में है. और केवल इसीके आधारपर किसी के समयादिक का निर्णय कैसा दिया जा सकता है प्रॉ. हर्नल, डॉ. पीटर्शन और डॉ. शलीशचंद्र ने इस पट्टावली के आधार पर से ही उमास्वाति को इशाकी पहली शताब्दी का विद्वान् लिखा है, और उस से यह मालूम होता है कि- उन्हों ने इस पट्टावली की विशेष जाँच नहीं की " (रत्न. क. प्रस्तावना पृष्ट १४६)

" कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् २१३ के बाद हुए हैं उससे पहले नहीं, शिवकुमार महाराज के समीकरण कदम्ब वंश के राजा शिवमृगेन्द्र वर्मा से किया है अतः कुन्दकुन्दाचार्य शक सं ४५० के विद्वान् सिद्ध होते हैं (र. क. प्र. पृ. १६५) " कुन्दकुन्द अन्तिम आचारांग धारी लोहाचार्य की कई पीढियों के बाद हुवे हैं कुन्दकुन्द किसी भी प्रकार विक्रम की पहली शताब्दी के विद्वान् सिद्ध नहीं होते " (र. क. प्र. पृ १७६) "उपलब्ध–साहित्य में कुन्दकुंद के ग्रंथ ही सब से अधिक प्राचीन ठहरते हैं " (र. क. प्र. पृ. १८१)

" जिनचंद्र कुंदकुंद के गुरु थे ऐसा किसी भी समर्थ प्रमाण

से सिद्ध नहीं होता और किसी आचार्य का नाम गुरु रूपसे नहीं मिलता " (र. क. प्र. पृ. १८२)

" डॉ. शतीशचंद्र विद्याभूषण एम्. ए. का मत है समंतभद्र इस्वी सन ६०० के लगभग हुए है " (र. क. प्र. पृ. १९२)
" इस में संदेह नहीं कि—कितने ही प्राचीन आचार्यों का समय इसी तरह अनिश्चितावस्था तथा गडबड में पडा हुआ है (र. क. प्र. पृ. १९६)

स्वामी समन्तभद्र के रत्नकरंड की प्रस्तावना में बाबू जुगल किशोरजी ने लगभग २५० पृष्ट भरे हैं परंतु किसी प्राचीन दिगंबराचार्य के समय का निर्णय नहीं कर सके यों हो तो त्यों हो, ऐसे अनुमानही अनुमान प्रकट करते चले गये. क्यों कि—कुन्दकुन्द, उमास्वाति और समन्तभद्र को ऐतिहासिक प्रमाणों से विक्रम की दुसरी सदी के ठहरा सके नहीं और पट्टावली ग्रंथ उन्हें विक्रम की दुसरी सदी के विद्वान् बतलाते हैं और बाबूजी को दिगंबर पट्टावलियों पर विश्वास इस लिए नहीं कि—वे सबकी सब अर्वाचीन और परस्पर विरोधी होने से विश्वास करने योग्य नहीं इसलिये बाबूजी को अनिश्चितही रहना पडा,

दिगंबर सम्प्रदाय की पट्टावलियाँ इस समय जितनी उपलब्ध हैं वे इतिहास दृष्ट्या किसी काम की चीज नहीं है. अपने परम्परा की बडाई दर्शाने के हेतु से लिखी गई है और परस्पर एक से दुसरी पट्टावली विरोध भी दर्शाती है. ऐतिहासिक दृष्ट्या लिखीहुई

नहीं है. जैसा जीमें आया वैसा लिख डाला है. और विक्रम के १३-१४-१५ और १६ में सैकेके लेखकों द्वारा लिखी गई है इसलिए पूर्ववर्ति घटनाओं का सत्य प्रतिपादन करने में वे असमर्थ हैं।

श्रवण बेलगुल के लेख भी अपूर्ण-संदिग्ध और लगभग विक्रमके ७ वीं सदीके पहले के नहीं हैं. उनमें सातवीं सदीसे लेकर ठेठ १४ वीं सदीतक के हैं प्राचीन से प्राचीन लेख नं. १ वाला भी विक्रम की सातवीं सदी का माना जाता है यह भी सन्देहात्मक और अपूर्ण है. इस लेख को किसने ? कब ? खुदवाया इसका नाम निशान भी नहीं है. अवशेष सभी शिलालेख उस लेखके पश्चात् के हैं ठेठ १३ वी १४ वीं सदीतक के हैं. इसलिए बेलगुला के लेख भी विक्रम के ५ वीं सदीके पूर्ववर्ति घटनाओं का इतिहास सत्य नहीं बतला सकते. कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, उमास्वाति, पुष्पदन्तादि के नाम उन लेखों में हैं जरूर परंतु उक्त आचार्यों के समय की घटनाओ का सुसंगत रूपसे क्रमवार वर्णन हो कहांसे ? क्यों कि उनके बहोत पीछे के खुदे हुए वे शिला लेख हैं. इतिहास का लेखक वर्तमान समय की घटनाओं का जितना अच्छा और सत्य वर्णन कर सकता है उतना पूर्ववर्ति घटनाओं का सत्य वर्णन कभी नहीं कर सकता, जबतक उस को पूर्ववर्ति घटनाओं के संबंध के लिए शिलालेख, ताम्रपत्रादि साधन सामग्री का अभाव रहे. इस दृष्टिसे भी बेलगुला के सभी शिला लेख उनके पूर्ववर्ति समय की घटनाओं के बतलाने में असमर्थ हैं. उनमें भूतकाल का वर्णन–वर्णन मात्र है ऐतिहासिक नहीं है.

स्वामी समन्तभद्र दिगम्बर सम्प्रदाय में एक स्वतंत्र विचार-वाले, साम्प्रदायिक बंधनों से मुक्त रहनेवाले महान् विद्वान् होगये हैं. वे बाह्य चारित्र से अन्तरंग चारित्र के बड़े पक्षपाती थे इसलिये उन्होंने अनेक लिंग (वेष) धारण किए थे. "काच्यां नग्नाटकोहं" आदि दो काव्यों से उन्होंने अपनी जीवनघटनाओंका वर्णन स्पष्ट कर दिया है कि कभी मे नग्न रहा हूं. कभी भस्म लगाता रहा, कभी मैं बौद्ध साधु बनगया, कहीं परिव्राजक, इस परसे स्पष्ट है कि–वे लिंग (वेष) में मुक्ति मानने वाले नहीं थे वे नग्नता के कट्टर उपासक नहीं थे उनके रचित रत्नकरंडादि ग्रंथों में कुछ पद्य ऐसे हैं जिनसे पता चलता है कि–वे गृहलिंग में भी मोक्ष माननेवाले थे.

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, निर्मोहो नैव मोहवान्;
अनगारोग्रही श्रेयान्, निर्मोहो मोहिनो मुनेः

(रत्नकरंड प्रथम परिच्छेद श्लोक ३३)

अर्थात् निर्मोही (सम्यग् दृष्टि) गृहस्थ भी मोक्ष मार्गी है. परंतु मोही (मिथ्या दृष्टि) मुनि मोक्ष मार्गी नहीं है इस लिए मोही मुनिसे निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ है. यह उनके विचार कितने उदार हैं इसका कट्टर दिगम्बर मित्रों ने विचार करना चाहिए. एवं स्वयंभू स्तोत्र में वे फिर इस प्रकार कहते हैं कि—

ततस्तत्सिद्धयर्थं परमकरुणो ग्रंथमुभयं, ।
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥

(र. क. प्र. पृ. ८९)

समन्त भद्रके इन वचनों का अनुकरण कर पूज्यपाद ने भी वेप (लिंग) के विपय में ऐसा ही भाव समाधि तंत्र में प्रगट किया है.

> लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं, देह एवात्मनो भवः ।
> न मुच्यंते भवात्तस्मा देते लिङ्गकृताग्रहाः ॥
> (समाधि शतक ८७)

अर्थात् लिंग (जटाधारण–नग्नत्वादि) देहाश्रित है और देहही आत्मा का संसार है, इस लिए जो लोग लिंग (वेप) का ही एकान्त आग्रह रखते हैं–उसी को मुक्ति का कारण समझते हैं वे संसार बंधन से छूटते नहीं.

रंचमात्र भी वस्त्र रखने से मुक्तिजाता अटक जाने का दुराग्रह रखने वाले कट्टरों ने ऊपर के दोनों समर्थ विद्वानों के दोनों पद्यों पर लक्ष्य देना आवश्यकीय है. स्वामी समन्तभद्र को वेप का दुराग्रह नहीं था, कितनेक यह कहते हैं–कि " रोग हो जाने के कारण वेप परिवर्तनादि करना पडा " परंतु यह बात असत्य है. भोजन की पूर्ति के लिए विविध वेप धारण किए, या शिवमंदिर में गये यह दन्तकथा कल्पित है. तर्क पर नहीं ठहरती. क्यों कि वे किसी भक्त से मँगवाकर भोजन कर सकते थे उनको भोजन की पूर्ति के लिए अनेक देशों में घूमने का कोई प्रयोजन नहीं था. भ्रमण का हेतु कुछ भिन्न ही होना चाहिए. और विविध वेप परिवर्तन करनेकाभी कुछ विशेष कारण होना चाहिए. बाबू जुगल किशोरजी ने भी इस कथा को असत्य बतलाया है. यह कथा

अयोक्ति युक्त और सत्य से दूर है कि–जिस में एकभी बात सत्य नहीं है. प्रथमतः भस्मक रोग कष्टसाध्य या असाध्य है. बिना औषधी के केवल शिवार्पणसे ही मिट जाना असंभव है क्यों कि महिनों से औषधी सेवन करने परभी जो रोग जल्दी नहीं मिट सकता, वह केवल एकही या दो तीन दिनके शिवार्पणसे कैसे मिट सकता है ! दुसरी बात यह है कि–अनेक वेष बदल कर संसार को धोखा देना यह आत्म वंचना है. समन्तभद्र सरीखे उच्च कोटी के विद्वान् के लिए यह लांछनास्पद है. इस दन्त कथा में अनेक वातें ऐसी हैं जिसमें समन्तभद्र के चारित्र को व विद्वता को कलंक लगता है इसलिए समन्तभद्र के संबंध की यह कथा कल्पित और निस्सार प्रतीत होती है. प्रायः पौराणिक ढंग की कथाएँ इतिहास से वैषम्य रखने वालीही हुआ करती है. अस्तु. मेरी समझसे तो वे सबसे प्रथम बौद्ध भिक्षु होने चाहिये. इसलिये ही उनका नाम समन्तभद्र पडा हो !

" सर्वज्ञ सुगतो बुद्धो, धर्मराजस्तथागत समन्तभद्रो भगवान् " (अमरकोष) इस प्रकार का नाम बौद्ध का सूचक है. इसके बाद प्रच्छन्न बौद्ध–संन्यस्त आदि वेषों का परिवर्तन कर अन्त में जैन साधु हो जाने का वर्णन यह सूचित करता है कि–बौद्ध, जैन और वैदिक धर्म में धर्म विप्लव प्रारंभ होगया था उस समय समन्तभद्रका अस्तित्व होना चाहिये और वह समय विक्रम की ६ शताब्दी के पश्चात् का है और आर्य स्कंदिलाचार्य इसके पहले हो चुके थे.

वाचकाचार्य श्री उमास्वाति का समय

अब रही उमास्वाति वाचकाचार्य के संबंध की बात ! इन का तत्त्वार्थसूत्र दोनों सम्प्रदायों को मान्य है. परंतु उमास्वाति किस सम्प्रदाय के थे ? कब ? और कहां ? हुए. उनका तत्वार्थसूत्र किस सम्प्रदाय के मन्तव्यों का पोषक है ? इन प्रश्नों पर विचार करना अवश्य है.

उमास्वाति या उमास्वामि नाम के दोएक आचार्य दिगम्बर सम्प्रदाय में भी हुवे हैं परंतु तत्वार्थसूत्र के कर्ता उमास्वाति वाचकाचार्य उन दोनों से भिन्न व्यक्ति है. दिगम्बर सम्प्रदाय में जो उमास्वाति हुए हैं उन के नाम के साथ वाचकपद लगा हुआ नहीं है किन्तु तृतीय पद धारक हुए हैं इस लिए दिगम्बर पट्टावलियों में वे दोनों आचार्य पदसे या सूरि पदसे विभूषित थे लिखा है परंतु तत्वार्थसूत्र के कर्ता चतुर्थ (वाचक या उपाध्याय) पद धारक थे यही बात इस में ध्यान देने योग्य है.

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के मतानुसार उमास्वाति वाचकाचार्य का समय तीर्थंकर महावीर वर्द्धमान स्वामी से लगभग ३०० वर्ष पश्चात् का है. गणधर श्रुतधर रचित महामान्य आगम ग्रंथों के पश्चात् संस्कृत भाषा में सूत्र पात करने वालों में आपका आसन सब से ऊँचा है वाचकजी ने ५०० ग्रंथों की रचना की थी. जिन में इनेगिने प्राप्य हैं. सभाष्य तत्वार्थाधिगमसूत्र, पूजा प्रकरण, प्रशमरति और जम्बूद्वीपसमास इन ग्रंथों को सब से प्रथम बंगाल

रॉयल्एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता ने मुद्रितकर प्रकट किये इसके पश्चात् अनेक स्थानों से मुद्रित हो चुके हैं. अतः उपलब्ध ग्रंथों के आधार से वाचकजी का परिचय करा देना है.

नन्दीसूत्र और कल्पसूत्र की स्थविरावली नामक प्रकरणों में उमास्वाति वाचकाचार्यका समय विक्रम से पूर्ववर्ति १७० वर्ष पहलेका लिखा है और डॉ. पीटर्सन ने यही मत स्वीकार किया है. एवं संस्कृत में सूत्र रचना का काल इतिहास भी वही मानता है. अब हमें यह देखना है कि वे किस जातीके थे? कहां के रहने वाले थे? उनके माता-पिता किस गौत्र के थे? उमास्वाति नाम से क्यों प्रख्यात हुए? किस गुरु के पास दीक्षा लेकर जैन यति हुए? इन प्रश्नोंका उत्तर हमे सभाष्यतत्वार्थाधिगम के अन्त के ५ पद्यों से मिल जाता है. वे पद्य स्वयं वाचकजी के रचित होनेसे अन्य साधनों की अवश्यकता नहीं है. वे पद्य ये हैं—

" वाचक मुख्यस्य शिवश्रियः. प्रकाश यशसः प्रशिष्येण।
शिष्येण घोसनंद, क्षमणस्यैकादशांग विदः ॥ १ ॥
वाचनया च महावाचक, क्षमणमुंडपाद शिष्यस्य;
शिष्येण वाचकाचार्य, मूल नाम्न प्रथित कीर्तेः ॥ २ ॥
न्यग्रोधिका प्रसूतेन, विरहता पुरवरे कुसुम नाम्नि;
कौभीषणिना स्वाति तनयेन, वात्सी सुतेनार्घ्यम् ॥ ३ ॥
अर्हद्वचनं सम्यग्गुरुक्रमेणागतं समुप धार्य;
दुःखार्तंच दुरागम, विहित मतिं लोकमवलोक्य ॥ ४ ॥
इदमुच्चैर्नागर वाचकेन, सत्वानुकम्पया दृब्धम्;
तत्वार्थाऽधिगमाख्यं, स्पष्टमुमास्वातिना शास्त्रम् ॥ ५ ॥

उपरोक्त पद्यों से यह पता चलता है कि—" न्यग्रोधिका " में आपका जन्म हुआ था. पिताका नाम " स्वाति " गौत्र " कौभीषणी " माताका नाम " उमा " गौत्र " वत्स " था इसलिये " स्वातितनय " या " वत्स सुत " नाम से भी पीछे के विद्वानों ने उमास्वाति को संबोधन कर के लिखा है. इस प्रकार संबोधन करने वालों में हेमचन्द्राचार्य भी हैं. गौत्रादिपरसे प्रतीत होता है कि–उमास्वाति ब्राह्मण होने चाहिए. और यति अवस्था में शिवश्री वाचक मुख्य के प्रशिष्य के शिष्य श्री घोषनन्दी श्रवण जिन के महावाचक (महामहोपाध्याय) क्षमणमुंडपाद और उनके शिष्य उमास्वाति थे. यति दीक्षा नागर वाचक शाखा में होनेसे आपको **" नागर वाचक "** भी कहते हैं. और कुसुमपुर (पाटलीपुत्र या पटना) में ठहर कर, तत्त्वार्थाधिगम सूत्र की रचना की. वाचकपद जैन सम्प्रदाय में उपाध्याय पद का पारिभाषिक शब्द है. जो पंच परमेष्ठी पद में चतुर्थ पदका सूचक है इसलिये तृतीय पद धारक आचार्यों की पट्टावली में इनका नाम नहीं है. परंतु पाठक परम्परा-में इनका नाम है. और स्थविरावली में **" साइणं वन्दे "** लिखा है. नागर वाचक शाखा श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में ही प्रचलित है. दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रंथों में इस शाखा का उल्लेख मात्र तक नहीं है. दिगम्बर श्रावक श्रीयुत् तात्या नेमीनाथ पांगल ने भी यह मत मान्य रक्खा है (प्रगति आणि जिनविजय. ता. १६।७।१९११ ई. का अंक.)

तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में वाचकजी ने जैन दर्शन के सार भूत सिद्धान्तों का–संक्षेपतः उत्तम रीतिसे दिग्दर्शन करादिया है.

अन्यान्य दर्शनों के जैसे न्यायसूत्र, पाणिनीयसूत्र, और योग-सूत्रादि हैं वैसा ही यह जैन दर्शन का सूत्र ग्रंथ है. इसलिये इनका अस्तित्व सूत्र रचना काल का ही मानना होगा क्यों कि-सब से प्रथम संस्कृत भाषा में जैन दर्शन का सूत्रपात इन्हीं ने किया हैं.

दिगम्बर सम्प्रदाय में उमास्वाति या उमास्वामि नाम के दो आचार्य हुए हैं जिन मे एक तो आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य माने जाते हैं और दुसरे वैद्यक सतसई के कर्ता माने जाते हैं दिगम्बर सम्प्रदाय का यह कहना है कि-कुन्दकुन्द के शिष्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र की रचना की है परंतु इस के लिए एक भी सबल प्रमाण उन के पास नहीं है और रचना शैली भी भिन्न है. और विषय प्रतिपादन शैली में भी पृथकत्व है इस लिए यह मानलेना होगा कि-तत्त्वार्थ सूत्र के कर्ता वाचक उमास्वाति कुन्दकुन्द के शिष्य नहीं थे. किन्तु क्षमणमुंड पाद के शिष्य थे. अब यह प्रश्न यहाँ हो सकता है कि-दिगम्बर सम्प्रदाय में भी तत्वार्थसूत्र माना जाता है ? इस का समाधान यह है कि-अच्छे पदार्थ को सभी अपनाते हैं-जैसा सिन्दूर प्रकरण, उपमितिभवप्रपंचा कथा, भक्ता-मर और कल्याण मंदिरादि का दिगम्बर सम्प्रदाय सदासे आदर करती आरही है किन्तु उक्त ग्रंथों के कर्ता हुए हैं श्वेताम्बर. इसी प्रकार तत्त्वार्थ के लिए भी समझ लेना चाहिए. क्यों कि-तत्त्वार्थ श्वेताम्बरों की मान्यताका द्योतक और पोषक है यह हम आगे चलकर बतलायेंगे.

तत्वार्थसूत्र पर स्वोपज्ञभाष्य है. गूढार्थों को समझने के लिए यह भाष्यही सर्वोपयोगी है. यद्यपि दोनों सम्प्रदायों की ओर से इसपर पचासों टीका ग्रंथ बन चुके हैं परंतु वे सब भाष्य से सैकडों वर्ष पीछे और भाष्य का आश्रय लेकर ही बने हैं. सर्वार्थसिद्धि टीका दिगम्बर सम्प्रदाय में सब से मुख्य और प्राचीन मानी जाती है वह भी सूत्र से लगभग हजार बारह सो वर्ष पीछे भाष्य की छाया लेकर ही बनी है, यह बात शब्द साम्यता परसे स्पष्ट हो जाती है. कई दिगंबर मित्र भाष्य को अर्वाचीन कहते हैं किन्तु इस कथन की पुष्टी में कोई सबल प्रमाण नहीं है.

दिगम्बर सम्प्रदाय का एक यह भी आक्षेप है कि-श्वेताम्बर सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा में उमास्वाति का नाम क्यों नहीं ? इसका उत्तर तो हम पीछे लिख भी आये हैं कि-वाचक परम्परा में उनका नाम आया है. दि. श्रावक ता. ने-पांगले ने भी लिखा है कि-" सर्व दर्शन संग्रह में जैन दर्शन नामक एक भाग है उस में प्रसिद्ध तत्ववेत्ता माधवाचार्य ने उमास्वाति को बहुमान पूर्वक वाचकाचार्य संबोधन से संबोधित कर लिखा है कि-इन के पास ४०० विद्यार्थी पढते थे " इस पर से यह स्पष्ट है कि-वे आचार्य नहीं थे किन्तु वाचना देनेवाले वे वाचक थे. किन्तु दिगम्बर ग्रंथों में उमास्वाति के लिये वाचक विशेषण हमारे देखने में नहीं आया इसलिये दिगम्बर सम्प्रदाय में उमास्वाति नाम के दो आचार्य हुए हैं. वे तत्त्वार्थ के कर्ता वाचक उमास्वाति से भिन्न है.

बाबू जुगल किशोरजी भी कुन्दकुन्द, उमास्वाति और स्वामी

समन्तभद्र के समय के संबंध में किसी प्रकार का भी निर्णय नहीं दे सके और सन्देह प्रकट कर रहे हैं.

अब हमें यह बतलाना है कि–तत्त्वार्थसूत्र श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के मान्यता का किस प्रकार द्योतक और पोषक है ? इस के लिये तत्त्वार्थ सूत्र के अध्याय ९ पर जो दो सूत्र हैं वे बस है.

" पुलाक बकुश कुशील निर्ग्रंथ स्नातका–निर्ग्रंथाः
संयमश्रुत प्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपातस्थान
विकल्पतः साध्याः ।

उपरोक्त दोनों सूत्र निर्ग्रंथों के पांच दर्जे बतलाते हैं और इसपर सर्वार्थसिद्धि दिगम्बर टीका भी इन पांच भेदों को मान्य रखती है. तत्त्वार्थ को एकान्त नग्नत्व का ही दर्जा मान्य होता तो निर्ग्रंथों के पांच भेद क्यों माने गये ?

बकुश दर्जे के लिये लिखा है कि––

" शरीरोपकरणविभूषानुवर्तिनोऽविविक्तपरिवारा मोह
शबलयुक्ता बकुशा "

अर्थात्–बकुश दर्जे का मुनि शरीर उपकरण की विभूषा (शोभा) आदि के अनुवर्ति होते हैं यहां प्रश्न यह हो सकता है कि–यदि शरीर मात्रही जहाँ परिग्रह है तब उपकरणादिक की शोभा के अनुवर्ती कैसे ? इसी प्रकार कुशील दर्जे के मुनि के लिए लिखा है कि–

" कथंचिदुत्तरगुणविरोधिनः प्रतिसेवना कुशीलाः "

अर्थात्–कभी उत्तर गुणों में जिन के दोष आता है वह प्रतिसेवना कुशील निर्ग्रंथ है. यह वाक्य भी मुनियों को दोषों का लगना सूचित करता है. आगे लिखा है कि––

" चारित्र परिणामस्य प्रकर्षाप्रकर्ष भेदे सत्यपि नैगमसंग्रहादि नयापेक्षया सर्वेऽपि ते निर्ग्रंथा इत्युच्यते "

अर्थात्–परिणामोंकी अपेक्षा से चारित्र में प्रकर्ष और अप्रकर्ष भेद रहने परभी नैगमादि नयोंकी अपेक्षा से पांचो दर्जोंकोही (यानि सदोष–निर्दोष सभीको) निर्ग्रंथही कहना होगा. यहां पूज्यपाद अपनी टीका में भी यह बात स्वीकारते हैं कि–चाहे मुनि सदोष हो वा निर्दोष किन्तु नयवाद की अपेक्षा से सभीको निर्ग्रंथ कहना मानना होगा. अब कहाँ रही एकान्त नग्नवाद की बात ! पुलाक निर्ग्रंथ के लिए लिखा है कि—

" पंचानां मूलगुणानां रात्री भोजनवर्जनस्य च पराभियोगात् बलात् अन्यतमं प्रतिसेवमानाः पुलाको भवति "

अर्थात्–पांच मूलगुण और छठ्ठा रात्री भोजन व्रत में भी दुसरे के अभियोग (दबाव) से जबरदस्ती से व्रतों के विपरीत अन्य प्रकारकी प्रतिसेवना करनेवाला पुलाक निर्ग्रंथ होता है. यहां पांच मूल गुण में चतुर्थव्रत भंगकी बातभी आजाती है यानी कारणवश पुलाक स्त्री संगादिभी कर सकता है, यह बात ध्वनित होती है. फिर अन्यान्य परिग्रह की तो स्वयं छूट हो ही जाती है यह पुलाक निर्ग्रंथ के लक्षण पूज्यपाद दर्शा रहे हैं.

आगे पूज्यपाद लिंग (वेष) के दो प्रकार दर्शाते हैं (१) द्रव्यलिंग और (२) भावलिंग. जिसमें भावलिंग से ही पांचो प्रकार के निर्ग्रंथोंका लिंग प्रतीत होना लिखा है. यही बात बडे मार्केकी है. क्यों कि—भाव लिंग ही द्रव्यलिंग का कारण है. जिसके भावसे अन्तरंग में जैसा चारित्र होगा वैसाही बाह्य में वर्ताव रहेगा. अर्थात् अन्तरंग में जिसका विशुद्ध चारित्र नहीं है और बाहरसे सम्प्रदाय के आग्रह से नंगा फिरता हो इससे क्या उसे चारित्रवान् कहा जासकता है ? इससे स्पष्ट है कि जिस के अन्तःकरण में शरीर की शोभा बढाने की इच्छा है. उपकरणों पर मोह है उस के बाह्यलिंग त्यागवृत्ति को भी दांभिक वृत्ति मानना होगा. इसलिए बाह्यलिंग व्यर्थ है. एवं बकुश और प्रतिसेवनाकुशील के छ लेश्या होती है. जो नरक निगोद तक ले जाती है. यहाँ पूज्यपाद यह शंका उपस्थित करते हैं कि——

" कृष्णलेश्यादि त्रितयं तयो कथमिति चेदुच्यते ? "

इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि—

" तयोरुपकरणसंशक्तिसंभवादार्तध्यानं, आर्तध्यानेन च कृष्णादिलेश्या त्रितयं संभवतीति '

अर्थात् बकुश, प्रतिसेवना कुशील के उपकरणों की आशक्ति [मोह] ममत्व होना संभव है इससे उनको आर्तध्यान हो जाता है और आर्तध्यानसे कृष्णलेश्या होना संभव है. इस से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि—नग्न रहनेवाला मुनि भी नरक

निगोद तक जासकता है फिर नग्नत्व को एकान्त मोक्षका कारण कैसे माना जा सकता है ? और भावलिंग की ही जब प्राधान्यता है तब वस्त्रत्याग २८ वाँ मूलगुणभी कैसे माना जा सकता है ?

स्नातक और निर्ग्रंथ ये दो प्रकार (दर्जे) के मुनि के ही केवल शुक्ल लेश्या होती है तो क्या आज कोई यह दावा कर सकता है कि–इस समय स्नातक और निर्ग्रंथ है ? और यथाख्यात चारित्र का भी विच्छेद हो जाना क्यों माना जाता है ? जिनकल्प विच्छेद होगया उसे न मानकर यह कहा जाता है कि–शिवभूति ने नया क्या किया ? जो विच्छेद होगया उसी को पुनः प्रचलित किया वैसा यहां भी यदि कह दें तो कौन लिखते हाथ पकड सकता है ? अस्तु ।

वाचक उमास्वाति के तत्त्वार्थ सूत्र के नवम अध्याय के उपरोक्त दो सूत्र और उस पर पूज्यपादस्वामी की टीका को भी जब यह बात सम्मत है कि–परिग्रही अपरिग्रही, मोही, अमोही पांच प्रकार के निर्ग्रंथ होते हैं. और भावलिंग ही प्राधान्य है और यही बात मानकर श्वेताम्बर सिद्धों के १५ भेद दर्शाते हैं और वस्त्र पात्र की उपयोगिता बतलाते हैं जिसको न मानकर एकान्त नग्न वाद का पक्ष पात करते हैं यही दुराग्रह और प्रमाद है क्यों कि पांच प्रकार के निर्ग्रंथ मान लेने पर भी केवल नग्नवाद का आग्रह रख कर फिर चाहे जिस प्रकार शरीर शौभा और उपकरण रक्खो इस से मुनि पतित नहीं होता और केवल वस्त्र धारण कर लेने से मुनिपना चला जाता मानते हैं इस परसे यही कहना होगा कि श्वेताम्बर करें

वैसा उन्हें करना नहीं है बस बात इतनी ही है. परंतु उपरोक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि—उमास्वाति श्वेताम्बर मतानुयायी थे और उनका तत्त्वार्थसूत्र भी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के मान्य पदार्थों का द्योतक और पोषक है यह उपरोक्त दोनों सूत्रों ने स्पष्ट करदिया है.

नाग्न्य परिषह.

अब रही नाग्न्य परिषह की बात ! यह चारित्र मोहनीय कर्म प्रकृति के उदय से होता है इसलिए चारित्र मोहनीय कर्म की प्रकृति जिस के नष्ट हो जाँय उस को नग्न रहने की क्या आवश्यकता है ? और यह भी कोई नियम नहीं है कि—सभी परिषह एक समयावच्छदसे ही होते हैं ! यानी जब जिस परिषह को सेवन करने का उदय में आवे उस समय उस को भोग लेना अर्थात् किसी ने वस्त्र छीन लिए तो सहन करना इस का नाम नाग्न्य परिषह है. इसी प्रकार दंश-मंसादि का उपद्रव होतो सहन कर लेना यह इस का अर्थ है. परंतु वस्त्र को सदा के लिए त्यागही देना इसका नाम परिषह नहीं है. इधर नाग्न्य परिषह मानना और उधर वस्त्रत्याग को मुनिका २८ वाँ मूलगुण बतलाना यह वैषम्य है. इस पर ब्र. शीतल प्रसादजी ने भी विचार करना योग्य है क्यों कि—आपने हमारे कथन के विरुद्ध जैन मित्र में लिखा था उस का यह उत्तर है.

अन्त में कहना इतनाही है कि—उमास्वाति वाचक श्वेताम्बर

जैन सम्प्रदाय में. ही हुये हैं. और दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रंथों का रचना काल विक्रम के ६०० वर्षों के पश्चात् का है.

प्रिय पाठक गण ! यह लेख इतना बढ जाने का कारण यह है कि-दिगम्बर पंडित श्रीयुत अजित कुमारजी जैनशास्त्री आदि ने संघ भेद का असत्य इतिहास लिखकर श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय पर यह आक्षेप किया कि-१-श्रु. भद्रबाहु की आज्ञाका उल्लंघन कर स्थूलभद्रादिने नवीन पंथ चलाया इस कथा का हमें सप्रमाण खंडन करना योग्य था. २-" नग्न " ही जिनलिंग है. वस्त्र रखना कुलिंग यानी जिनमत के विरुद्ध है इस मुद्दे का हमें सप्रमाण उत्तर देना पड़ा. ३-श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के आचार्यों ने अंगादि आगम शास्त्रों की नवीन कल्पना की इस आक्षेप का सप्रमाण समाधान कर देना पडा इत्यादि कारणों से यह दूसरा भाग इतना बढ़ गया इस लिये पाठकों से हम क्षमा प्रार्थी है.

॥ अर्हम् ॥
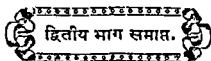
श्वेताम्बर मत समीक्षा-दिग्दर्शन.

भाग ३ रा.

भद्रबाहु चरित्र चर्चा.

(लेखक-श्री. बालचंद्राचार्यजी-खामगांव.)

द्वितीय भाग में संघ भेद के इतिहास के संबंध में असत्य आक्षेपों की आलोचना हम कर चुके हैं इस तृतीय भाग में हमें यह बतलाना है कि-दिगम्बर भट्टारक रत्ननन्दी कृत भद्रबाहु चरित्र कल्पित और ऐतिहासिक दृष्टया मानने योग्य नही है किन्तु श्वताम्बर जैन सम्प्रदाय को कलंकित करने को द्वेष बुद्धि से लिखा गया है.

रत्ननन्दी कृत भद्रबाहु चरित्र संस्कृत के अनुष्टुप् पद्यों में है. उस पर उदयलालजी काशलीवाल का हिन्दी अनुवाद और प्रस्तावना है. एवं बनारस के जैन भारती भवन द्वारा इस्वी सन १९११ में मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ है. चरित्र ४ भागों में विभक्त है. प्रथम परिच्छेद में १२९ श्लोक हैं, और गोवर्द्धन गुरु से भद्रबाहु ने जैन दीक्षा अंगिकार की यहां तक वर्णन है. द्वितीय परिच्छेद में श्लोक संख्या ९२ है और उज्जयिनी के राजा चन्द्रगुप्त को १६

स्वप्नों का दीखना, उस का फल सुनकर भद्रबाहु से दीक्षा लेना और विहारकर चले जाना यहां तक वर्णन है. तृतीय परिच्छेद के ९९ श्लोक हैं और द्वादस वर्षीय दुर्भिक्ष का पड़ना, उसके बाद विशाखाचार्य का पीछा उज्जयिनी आना यहां तक वर्णन है। चौथे परिच्छेद की श्लोक संख्या १७७ है और रामाचार्य, स्थूलाचार्य द्वारा श्वेताम्बर मत का प्रादुर्भाव होना वगैरा वर्णन है. इस चरित्र की कुल श्लोक संख्या ४९९ है. इस के साथ शुद्धिपत्र भी लगा हुआ है.

चरित्र में व्याकरण दोष

शुद्धिपत्र के सिवा भी अशुद्धियों की भरमार है इस पर से यह जाना जा सकता है कि—रत्ननन्दी संस्कृत के अच्छे विद्वान् नहीं थे. रचना में व्याकरण संबंधी दोष बहुत है, उनमें से कुछ हम यहां बतला देना चहाते हैं—

(१) भद्रबाहु चरित्र पृष्ट २ श्लोक ७ के तीसरे चरण पर "धुनते" जो क्रिया पद है वह अशुद्ध है वहां पर "धूनुते" या "धूोते" होना चाहिए था क्यों कि—"धुञ्" कम्पने धातु का धकार का "ऊ" कार ह्रस्व हो नहीं सकता

(२) भ च. पृष्ट ९ श्लो. ११ पर "परानन्दधुं" लिखा है यह नितान्त अशुद्ध है. "ट्ट" नदी समृद्धौ के परोक्ष लिट् मे एवं मध्यम पुरुष के द्वी वचन में "परानन्दथुः" होना व्याकरण सम्मत है.

(३) भ च पृष्ठ ११ श्लो. ३९ के अन्त में " यकः " लिखा है यहं अप्रासंगिक और अटपटासा मालूम देता है.

(४) भ. च. पृ. १३ श्लो. ५७ के अन्तिम चरण में " कोट्टपुर " शब्द लिखा है यहां छंदोभंग होगया है; " पु " तृतीय वर्ण के स्थानपर कोई दीर्घवर्ण चाहिए था.

(५) भ. च पृ. १५ श्लो. ६४ के अन्तिम चरण में " कुल " शब्द लिखा है किन्तु कुल शब्द नित्य नपुंसक लिंगी है एवं इसी श्लोक में " किंकुलस्त्वकं " लिखा है यह सर्वथा अशुद्ध है. " त्वकं " के स्थानपर " तव " होनाथा षष्ठी के स्थान पर प्रथमा की है यह कारक दोष है

(६) भ. च पृ १५ श्लो. ६५ पर " किं पुत्रो वद वाक्यं मां " इस स्थान पर " वदवाक्यं मे " होना था. यहां पर कर्म में " मां " किया है यहां षष्ठी का परि हार किस लिए किया गया है ?

(७) भ. च. पृ १६ श्लोक ७२ अन्त के चरण में " गिरा प्रस्पष्टम् " लिखा है यह प्रथमान्त योगी को द्वितियान्त विशेषण शाब्द वैमनस्य है.

(८) भ च. पृ. १६ श्लो. ७५ के प्रथम चरण में " गुरु व्याहारमाकर्ण्य ' यह अशुद्ध पाठ है. क्यों कि–" हृञ् " धातु का "वि" और "आङ्" पूर्वक "व्याहर" होता है.

उपरोक्त अशुद्धिएँ ग्रंथकर्ता की है. प्रेसकी अशुद्धिएँ तो क्षम्य हुआ करती हैं परंतु ग्रंथ कर्ता की अशुद्धियाँ उन के ज्ञान का भान करा देती हैं. इसलिए पाठकों के निदर्शनार्थ थोडीसी ऊपर बतला दी गई हैं.

रत्ननन्दी की असत्य कल्पना?

भद्रबाहु चरित्र के आरंभ में ही रत्ननन्दी ने लिखा है कि—" मगध के राजा श्रेणिक ने महावीर प्रभु से पूछा कि—इस भारत वर्ष में दुषम पंचम काल में कितने केवलज्ञानी और कितने श्रुत केवली होंगे ? और आगे क्या क्या होगा ? श्रेणिक के इन प्रश्नों के उत्तर में महावीर प्रभु ने कहा, हे नराधीश ! मेरे मुक्ति जाने के बाद, गौतम, सुधर्मा, जम्बू यह तीन केवली होंगे और समस्त शास्त्रों के जानने वाले विष्णु, नन्दीमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पांच श्रुत केवली होंगे. अब तुम भद्रबाहु का चरित्र सुनो ! क्यों कि—जिस के श्रवण से मूर्ख लोगों को अन्यमतों की उत्पत्ति मालूम हो जायगी. उस समय श्रेणिक ने वीर जिनेन्द्र के मुख से भद्रबाहु मुनिका चरित्र सुना था उसे उसी प्रकार इस समय संक्षेप से मै कहता हूँ [भ. च. परि १ श्लो. २०]

पाठक ! समझ सकते हैं कि—श्रेणिक ने वीर प्रभु से भद्रबाहु चरित्र सुना उस समय क्या रत्ननन्दी वहाँपर बेठा हुआ था ! कि जिस से उसने उसी प्रकार चरित्र लिखडाला? क्या यह असत्य कल्पना नहीं है !

वीर प्रभु ने अन्य किसी केवली-श्रुत केवली का चरित्र न सुना कर भद्रबाहु का ही चरित्र क्यों सुनाया ? जैसा ब्राह्मणों ने पीछे से पुराणों की रचना कर व्यासजी के नाम पर चडा कर मनमाना स्वार्थ साध लिया तद्वत् रत्ननन्दी ने भी उन ब्राह्मणों का अनुकरण कर भद्रबाहु चरित्र को महावीर के नाम पर चढ़ाकर श्वेताम्बरों को जैनाभास आदि कहने का दाव साधलेना चाहा परंतु साध सका नहीं और कह देना पडा कि–

"श्वेतांशुकमतोद्भूतमूढान् ज्ञापयितुं जनान् व्यरीरचमिमं ग्रंथं"

अर्थात् भद्रबाहु चरित्र बनाने का असली प्रयोजन श्वेताम्बरों की कल्पित उत्पत्ति लिखना था और जिन शासन से बहिर्भूतता बतलाना रत्ननन्दी को अभिष्ट था इस लिए भद्रबाहु चरित्र के बहाने श्वेताम्बरों के लिए जो कुछ कहना–लिखना था वह सब कुछ लिख-डाला. और वह भी महावीर प्रभु के मुख से (परम्परासे नहीं स्वयं ने) कहा हुआ कहा, मानों रत्ननन्दी उस समय महावीर प्रभु के सान्निकट में ही कहीं बैठे हुवे ही नहीं थे ? क्या यह थोडा दंभ है ! मगर यह जमाना अन्धविश्वास का नहीं है. इस लिए पोल खुले सिवा नहीं रह सकती. यह चरित्र पौराणिक ढंग का द्वेष बुद्धि से लिखा हुआ होने से इस में ऐतिहासिक सत्य की गंधतक नहीं है.

कथारंभ में इतिहास का अनादर

भद्रबाहु चरित्र की कथा के आरंभ में ही रत्ननन्दी ने

इतिहास का अनादर कर डाला है. पौंड्रवर्द्धन देश और कोट्टपुर नगर भारत के किस प्रान्तमें और कहां पर है ? इसका कुछभी उल्लेख चरित्र में नहीं है. और पद्मधर राजा का समय एवं उस के समकालीन कौन २ राजा कहां २ राज्य करते थे ? इस का भी कुछ पता नहीं और सोमशर्म्मा पुरोहित से सोमश्री पत्निद्वारा भद्रबाहु का जन्म कब ? और कहां हुआ ? इन बातों की रत्ननंन्दी ने कुछ भी परवा न कर पौराणिक ढंगका कल्पित चरित्र लिख डाला !

चरित्र में असंभव बातें

आगे रत्ननन्दी लिखते है कि–" भद्रबाहु बालक ने क्रीडा करते १४ गोलीएँ एक पर एक चढा दी. यह देखकर गोवर्द्धन गुरु ने उस बालक के माता–पिता से जाकर कहा, तुह्मारा पुत्र बडा विद्वान् होगा, इस को हम पढाना चहाते हैं इसलिये हमें दे दो. और माता–पिताने उनको भद्रबाहु दे दिया " यहां पर यह प्रश्न हो सकता है कि–गोलिएँ एकपर एक ठहरना असंभव ? दुसरी बात यह है कि–बाल वयस्क गृहस्थ बालक को वन में रहने वाला–नग्न गोवर्द्धन ने उस को किस प्रकार साथ में रक्खा ! उस के खान–पानादिकी व्यवस्था किस प्रकार की ? परिग्रह रूप बालक पर गोवर्द्धन को मूर्च्छा हुई या नहीं ? और मूर्च्छा हुई तो पांचवें महाव्रत का भंग हुआ या नहीं ? इस बात का स्पष्टीकरण रत्नमन्दीने क्यों नहीं किया ? और यों कैसे लिख दिया कि–साथ में रखकर समस्त विद्याएँ सिखा दी–?

आगे लिखा है कि–" विद्या पढकर भद्रबाहु घर आजाने पर एक दिन राजसभा में भद्रबाहु ने ब्राह्मणों से वाद कर पराजित किया और पद्मधर राजा को जैनी बनाया " यहां यह प्रश्न हो सकता है कि– ब्राह्मणों से किस विषय में वाद किया ? राजा कैसे जैनी होगया ? और जैनी बन जाने पर क्या क्या ? धर्म कार्य राजाने किए ? इन प्रश्नोंका चरित्र में कुछ भी समाधान कारक उत्तर नहीं हैं. आगे चरित्र में लिखा है कि–भद्रबाहु दीक्षा लेने पर द्वादशांग शास्त्र पढे " दीक्षा कब और कहां ली ? और पहले सेही समस्त विद्याएँ पढ चुके थे तो फिर क्या समस्त विद्याओं से द्वादशांग पृथक् हैं ? आगे चरित्र में लिखा है कि–" भद्रबाहु को गुरु ने आचार्य पद पर नियोजित किया " यहां यह प्रश्न हो सकता है कि–आचार्य पद संघ दे सकता है या गुरु ? इसका दिगम्बर ग्रंथों ने क्या निर्णय दिया है ? यहाँ भद्रबाहु चरित्र का प्रथम परिच्छेद पूरा हो जाता है.

द्वितीय-परिच्छेद की चर्चा ।

द्वितीय परिच्छेद के आरंभ में गोवर्द्धनाचार्यका देहोत्सर्ग लिखा है परंतु कब और कहां ? इस का कुछ भी उल्लेख नहीं है इस के आगे लिखा है कि–" भद्रबाहु बारा हजार (१२०००) साधुओं के साथ विहार करते उज्जयिनी के बहार आकर ठहरे उस समय चन्द्रगुप्त वहाँ के शासक थे, उन कों उसी रात कों १६ स्वप्न खराब आये हुवे थे, इस लिए चन्द्रगुप्त भद्रबाहु के पास जाकर

उन स्वप्नों के फल पूछने लगे" पाठक समझ सकते हैं कि—बारा हजार साधु साथ लेकर भद्रबाहु उज्जयिनी को आये और बारा हजार साधु समुदाय को साथ लेकर भद्रबाहु दुर्भिक्ष के भय से दक्षिण देश में फिर चले गये रत्ननन्दी लिखते हैं इस पर से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि—रामाचार्य और स्थूलाचार्य भद्रबाहु के साथ आये हुवे भी न थे और भद्रबाहु के साथ गये भी नहीं. बारा हजार आये थे और बारा हजार ही गये अर्थात् भद्रबाहु के साथ आये थे उतने ही गये इस परसे यह समझा जा सकता है कि—स्थूलभद्रादि भद्रबाहु की शिष्य परम्परा से भिन्न संघ वाले थे.

स्वप्नों का असत्य फलादेश.

आगे रत्ननन्दी लिखते हैं कि—भद्रबाहु ने चन्द्रगुप्त के स्वप्नों का फल इस प्रकार कह सुनाया:—

(१) तेने प्रथम स्वप्न में सूर्य का अस्त देखा जिस का फल यह है कि—**एकादशांगादि श्रुत ज्ञान न्यून हो जायगा".**

परंतु दिगम्बर समाज तो अंगशास्त्र नष्ट होगये मानता है और रत्ननन्दी न्यून हो जाना लिखता है यह कैसे ? हाँ श्वेताम्बर सम्प्रदाय अंगादि श्रुतज्ञान का न्यून हो जाना मानता है और उन्हीं को शब्द प्रामाण्य मानता है.

(२) द्वितीय स्वप्न में कल्प वृक्ष की शाखाएँ भंग हुई देखी इस का फल यह है कि—**" अब कोई राजा यति धर्म ग्रहण नहीं करेगा "**

परंतु इस स्वप्न को देखने के पश्चात् ही स्वयं चन्द्रगुप्त ने दीक्षा ली ? रत्ननन्दी लिखता है अमोघवर्षने दीक्षा ली ? गोल देश के नरेश दीक्षा लेकर गोलाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए ? यह सब घटनाएँ रत्ननन्दी के लिखे हुए फलादेशके विपरीत है.

(३) तृतीय स्वप्न में चन्द्रमंडल को बहुत से छिद्र युक्त देखा इस का फल यह है कि–" **पंचम काल में जिनमत में अनेक मतों का होना सूचित करता है.** "

परंतु जिनमत में ही क्या सभी मतों में अनेक मत–मतान्तर शाखा–प्रशाखा होती है और हैं. यह सिद्धान्तिक बात है.

(४) चौथे स्वप्न में बारा फर्णका कृष्ण सर्प देखने से " **बारा वर्ष का अत्यन्त भयंकर दुष्काल पडेगा.** "

परंतु बारा वर्षीय दुर्भिक्ष एक बारही नहीं तीन बार मगध में पड चुके हैं परंतु रत्ननन्दी मालव प्रान्त में पडने का लिखते हैं यह असत्य बात है. क्यों कि मालव प्रान्त में कभी दुष्काल पडता ही नहीं है.

(५) पांच वें स्वप्न में देवों के विमान उल्टे चलते देखा इस का फल यों है कि–" **पंचम काल में देव, विद्याधर और चारण मुनि नहीं आवेंगे** " नहीं आनेका कारण क्या ? और कई देवता आये हैं ऐसा दिगम्बर ग्रंथों में पाठ है अतः इस परस्पर विरुद्ध कोटी का परिहार क्या है ?

(६) छट्ठे स्वप्न में खराब स्थान में कमळ उत्पन्न हुआ देखा इस का फळ यों है कि–" **हीन जाती के लोग जिन मत ग्रहण करेंगे क्षत्रियादि उत्तम कुलवाला नहीं करेगा.** "

यह बात भी रत्ननन्दी की गलत है क्यों कि–वैश्यादि उत्तम कुलोंमें ही जैन धर्म है. हीन जाती में जैन धर्म है ही नहीं. हाँ, चतुर्थ, पंचम और सेतवाळ आदि जातियों को दिगम्बर–खंडेलवाल आदि अपने से नीचे जाती के मानकर उनसे भोजनादि व्यवहार नहीं करते और इनमें विधवा विवाह भी प्रचलित हैं परंतु तत्वतः वह नीच जातिएँ नहीं है. और उन को नीचे समझना भी अनुचित है. एवं चन्द्रगुप्त के पश्चात् अनेक राजा–महाराजा क्षत्रिय जैन धर्मावलम्बी हुए हैं.

(७) सातवें स्वप्न में भूतों का नृत्य देखा इस का फल यह है कि–" **मूर्ख लोग नीचे देवों की उपासना करेंगे** " मूर्ख जन तो सदैव से ही नीचे दर्जे के देवों को मानते हैं. इसमें नाविन्य क्या है ! और यह फलादेश ही निर्थक है ।

(८) आठवें स्वप्न में खद्योत का प्रकाश देखने से " **जैन सूत्रों का उपदेश करनेवाले भी मिथ्यात्व युक्त होंगे और जिनधर्म कहीं २ रहेगा** "

यह फल भी रत्ननन्दी का कहा हुआ असत्य है क्यों कि–जैनधर्म भारत के सभी प्रांतों मे है. धर्मोपदेश करने वाले, सभी को मिथ्यात्व युक्त कहना ही मिथ्यात्व है.

(९) नवम स्वप्न में छीतर (थोडा) जल भरा सरोवर देखने का फल यह है कि–" कल्याणिक भूमि में जिनधर्म का नाश और कहीं २ दक्षिणादि देशों में कुछ रहेगा. '

यह भी कहना असत्य है क्यों कि–दक्षिण से तो गुजरात, कच्छ, काठियावाड और मारवाड आदि देशों में जिनधर्म पालन करने वालों की संख्या अधिक है.

(१०) दसम स्वप्न में सुवर्ण पात्र में कुत्ते को क्षीर भोजन करता देखा इसका फल यह है कि–" नीचों के पास लक्ष्मी रहेगी और कुलीनोंको दुष्प्राप्य होगी. "

यह बात भी झूट है, क्यों कि–" वीरभोग्यावसुंधरा " है. यह अटल सिद्धान्त है कि– विद्या, बुद्धि, और पराक्रमी प्रायः लक्ष्मीवान्, धनाढ्य होते हैं. इस में नीच-ऊँच का कोई कारण नहीं है.

(११) ग्यारहवे स्वप्न में हाथी पर बंदर बेठा हुआ देखा इस का फल यह है कि–" नीच कुल के राज्य करेंगे और ऊँचे क्षत्रियादि कुल के राज्य रहित होंगे. "

विशेषतः इस विषय की चर्चा नं. १० के स्वप्न में ही हो चुकी है तथापि इतना हम यहांपरभी कह देते हैं कि– चन्द्रगुप्त, सम्प्रति, विक्रम, शालिवाहन, अमोघवर्ष, सिद्धराज और कुमारपाल आदि अनेक राजा क्षत्रिय हो चुके हैं और वर्तमान

समय तक अनेक क्षत्रिय राजा विद्यमान हैं अतः यह भी रत्ननंदीका कहना गलत है.

(१२) बारवें स्वप्न में समुद्र को मर्यादा उल्लंघन करता हुआ देखा इसका फल रत्ननन्दी यों लिखता है कि–" **प्रजा की समस्त लक्ष्मी राजा छीन लेंगे, और न्याय मार्ग को उल्लंघन करने वाले राजा होंगे.** "

यह स्वप्न भी निरर्थक है क्यों कि-प्रजाकी समस्त लक्ष्मी राजा छीन लेंगे तब राज्य किस पर करेंगे ? और टेक्स [कर] वसूल भी कैसे होगा ? अभी तो प्रजातंत्रवाद की प्रबलता है और न्याय तो बारिक से बारीक चालनियों से छाना जा रहा है.

(१३) तेरहवें स्वप्न में छोटे बछडों से वहन किया गया रथ को देखने से " **तारुण्यावस्था में ही संयम लेंगे, और वृद्धावस्थावाले शक्ति घट जाने से दीक्षा नहीं लेंगे.** "

रत्ननन्दी ने इस स्वप्न का फल खोटा क्या समझकर लिखा ? क्यों कि–तारुण्यावस्था में संयम लेना अच्छा है. जो कुछ पुरुषार्थ किया जाता है वह तारुण्यावस्था में ही किया जा सकता है. और वह वृद्धापकाल में भी काम देता है.

(१४) चवदहवें स्वप्न मे राजा के पुत्र को ऊँट पर चढा देखा इस का फल रत्ननन्दी यों लिखता है कि–" **राजा लोग निर्मल धर्म को छोड कर हिंसक धर्म मार्ग स्वीकार**

करेंगे " मेरी समझ से तो राजा का धर्म प्रजा पालन ही है. और सर्व धर्मोपर सहिष्णुता रखना है. स्मरण रहे इस स्वप्न के पश्चात् अशोक, सम्प्रति आदि अनेक राजा अहिंसक धर्म पालन वाले भी हुए हैं इसलिए इस स्वप्न में भी अतिव्याप्ति दोष है.

(१५) पनरहवे स्वप्न में धूली से दटी [ढकी] हुई रत्नराशी के देखने से " **निर्ग्रंथमुनि परस्पर में निन्दा करने लगेगें.** "

यहभी रत्ननन्दी का लिखना गलत है क्यों कि-परस्पर निन्दा करने वाले निर्ग्रंथ मुनि नहीं हो सकते, और इस स्वप्न पर से तो यह सिद्ध होता है कि–इस स्वप्न के बाद सच्चे निर्ग्रंथ रहने ही नहीं चाहिए और इस स्वप्न के पश्चात् दोनों सम्प्रदायों में अनेक महान् आचार्य हो चुके हैं तो क्या उन सब की गणना निन्दक मुनियों में हो सकती है ?

(१६) सोलहवें स्वप्न में काले हाथियों के युद्ध को देखने से " **मनोऽभिलषित वृष्टी न होगी** " यह नैसर्गिक बात है कि–प्रतिवर्ष एकसी वृष्टि किसी देश किसी काल में भी नहीं हुआ करती, सदासे न्यूनाधिक्य हुआ ही करती है, इस में नाविन्य क्या है ?

चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्नों के फल भद्रबाहु ने इस प्रकार कहा, रत्ननन्दी लिखता है परंतु श्रुत केवली के वचन कभी संदिग्ध हो सकते हैं ? जिसकी समालोचना हम प्रति स्वप्न के फल के

नीचे करते चले आये हैं. दूसरी बात यह भी है कि–भविष्य कथन करना मुनि धर्म के विरुद्ध है. अतः रत्ननन्दी ने अपने मन से फल लिख दिए और भद्रबाहु के नाम पर चढा दिए.

आगे, रत्ननन्दी लिखते हैं कि–"भद्रबाहु के मुख से स्वप्नों के फल सुनकर चन्द्रगुप्त भयभीत हो गया और अपने पुत्र को राज्य सुप्रत कर भद्रबाहु से जिनदीक्षा लेकर निर्ग्रंथ बनगया".

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि–उन कष्टों के निवारण करने का भद्रबाहु से उपाय क्यों नहीं पूछा? और चन्द्रगुप्त नें अपने पुत्र कों राज्य दिया उस पुत्र का नाम क्या था? कितने पुत्र थे? यह क्यों नहीं लिखा? और जिनदीक्षा कब? और कहाँ ली?

इस के आगे रत्नन्दी लिखते हैं कि–"भद्रबाहु आहार के लिए जिनदास के घर कों गये, सेठ नमन-वंदन पूर्वक भद्रबाहु को घर में ले गये, मगर उस निर्जन घर में एक छे दिन का बालक पालने में सोया हुआ बोला, जाओ! जाओ!.! मुनि ने पूछा कितने वर्ष? बालक ने कहा "बारावर्ष" यह सुनकर मालव देश में बारा वर्ष का दुर्भिक्ष पडेगा जान कर, मुनिराज उस घर से पीछे लौट कर बन में चले गये"

सेठ जिस घर में ले गया वह घर शून्य कैसा माना जाय? छे दिन का बालक बोला, यह कितना असंभव कथन? कहीं छे दिन का बालक बोल सकता है? पाठकों को स्मरण रहे कि– स्वयं भद्रबाहु ने चन्द्रगुप्त के स्वप्नों के फल कथन में बारा वर्षका

दुर्भिक्ष का कह चुके थे फिर बालक के कथन सुनकर भद्रबाहु ने बालक से पूछा कितने वर्ष ? यह कितना विरोध है ! क्यों कि— भद्रबाहु स्वयं जानते हुए भी फिर बालक से पुछा ? यह श्रुत केवली का कितना अनादर ! मालवे में बारा वर्षीय दुर्भिक्ष पडाही नहीं मगध में पडा है यही बात चरित्र कों कल्पित सिद्ध कर रही है.

आगे रत्ननन्दी लिखते हैं कि—" भद्रबाहु ने समस्त मुनि संघ से कहा कि इस देश में भयंकर दुर्भिक्ष पडने वाला है इसलिये संयमी पुरुषों को यहां से चला जाना ठीक है. मुनि संघ विहार करने लगा, तब श्रावक संघ ने भद्रबाहु से कहा, हम सब प्रबंध करेंगें, आप जाईये नहीं. कुबेर मित्र, जिनदास, माधवदत्त आदि बडे २ धनवान् पुरुष साथ में थे परंतु भद्रबाहु ने उनको समझा कर कर्णाटक देशमें जाने के लिये प्रयाण कर दिया. "

मै ऊपर लिख आया हूं कि मालवे में दुर्भिक्ष पडाही नहीं और हरिषेणके मतानुसार भद्रबाहु दक्षिण—कर्णाटक में गये ही नहीं. उज्जयिनी में ही देहत्याग किया है. दुसरी बात यह है कि— महावीरानुयायी उपसर्गों का सामना करें या कायरों की तरह भाग जायँ ! अतः उपरोक्त कथन भी कल्पित है.

आगे रत्ननन्दी लिखता है कि—" भद्रबाहु चले गये तब श्रावक संघ ने रामल्य स्थूलभद्रादि साधुओं को ठंहरने की प्रार्थना की तब आग्रह देख वे यहां ठहर गये. "

रत्ननन्दी के उपरोक्त कथन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती

है कि--भद्रबाहु के संघ से स्थूलभद्र का संघ प्रथम से ही पृथक् था और दुर्भिक्षादि भयानक प्रसंग में ठहरना वीरों का काम है. और वही स्थूलभद्रादि वीर थे जो वहाँ रहे. और विशाखादि कायर चले गये. भद्रबाहु को साथ देने वाले स्थूलभद्र ही थे. यह इस का सार है. यहां दुसरा परिच्छेद पूरा हो जाता है.

परिच्छेद ३ रा.

३ परिच्छेद के प्रारंभ में वही पिष्टपेषण करते हुए रत्ननन्दी लिखते हैं कि--" मेरी आयु अल्प है ऐसा जानकर भद्रबाहु ने अपने पद पर विशाखाचार्य को स्थापन कर स्वयं भद्रबाहु चन्द्रगिरि पर अनशन करके रहे और चन्द्रगुप्त मुनि उन की सेवा में रहे. तथा विशाखाचार्य मुनि संघ को साथ लेकर दक्षिण में चले गये "

रत्ननन्दी के उपरोक्त कथन में परस्पर यह विरोध है कि–भद्रबाहुबोले " **आयुरल्पिष्टमात्मीयम्** " [मेरी आयु थोडी रही है] इस का विरोध कथन यह है कि–" **द्वादशाब्दं गुरोः पादौ पर्युपासेति** " [चंद्रगुप्तमुनि बोला बारा वर्ष गुरुचरणों की सेवा-उपासना करूँगा] भद्रबाहु तो अपनी आयुष्य अल्प कह रहे हैं अनशन भी करडाला और चन्द्रगुप्त बारावर्ष सेवा करने का कह रहे हैं यह दोनों वाक्य कितने विरोधी हैं ! क्या बारे वर्ष के काल को कोई अल्प काल कह सकता है ? और अनशन कर क्या कोई बारा वर्ष जीवित रह सकता है ?

आगे रत्ननंन्दी लिखते हैं कि-" गुरु आज्ञा पाकर चन्द्रगुप्त मुनि वन में भिक्षार्थ घूमने लगे, वन देवीने भोजन सामग्री वृक्ष के नीचे रख दी, चन्द्रगुप्त मुनि ने देखी परंतु दाता के सिवा लेना योग्य नहीं इसलिए आहार किए बिना ही पीछे गुरु के पास चले गये और यह घटना कही, गुरु बोले ठीक किया. दुसरे दिन भी वैसा ही हुआ. तीसरे दिन एक स्त्री वनमें आहार लेकर बेठी हुई देखी परंतु एकान्त में अकेली स्त्री से आहार लेना अयोग्य समझ कर पीछे लौटकर चले गये चौथे दिन वनदेवी ने कल्पित नगर वसाया मुनि उस नगर में घूसकर कल्पित श्रावकों से आहार किया. तदनंतर गुरु से जाकर कहा, आज अन्तराय रहित पारणा ' (भोजन) किया है तब भद्रबाहु ने चन्द्रगुप्त शिष्य की प्रशंसा की."

यह कल्पित कथा कितनी बेढंगी है ! क्या देव दत्त कल्पित आहार करने से दोष नहीं लगता ? और भद्रबाहु श्रुतकेवली होने पर भी वनदेवी का वृतान्त नहीं जान सके ! भद्रबाहु ने श्रुतोपयोग विना दियेही चन्द्रगुप्त की प्रशंसा कर डाली ! इस से तो गुरु-शिष्य दोनों दोषी ठहर गये.

आगे रत्ननन्दी लिखते हैं " भद्रबाहु स्वर्ग गये और चन्द्रगुप्त मुनि वहीं रहे " भद्रबाहु किस स्वर्ग में गये यह क्यों नहीं लिखा ? और वनदेवी से कल्पित अहार मिलने लगा फिर चन्द्रगुप्त कों वहांसे जाने की क्या जरूरत ! यह बात यहीं छोड कर रत्ननन्दी मालव की बात प्रारंभ करते हैं—

" मालवादि देशों में दुर्भिक्ष पड़ा, दान मिलने की आशा से दूसरे देशों से लोग उज्जयिनी में आगये, भूख से लोगों की अस्थिएँ अवशेष रहगई थी, एक दिन रामल्यादि मुनि आहार लेकर वन में चले गये, एक मुनि पीछे रहगया, उस का पेट भरा हुआ देख रंकों ने पेट फाड (चीर) कर आहार निकाल कर खागये. "

रामल्य-स्थूलाचार्य यह रत्ननन्यादि दिगंबर लेखकों के कल्पित पात्र हैं. श्वेताम्बर सम्प्रदाय में उक्त नाम वाले कोई आचार्य हुए ही नहीं और स्थूलभद्र की परम्परा में तो काष्टके पात्रों में आहार-जल लाकर सब मुनि एक स्थान में बैठकर गृहस्थ के घर से लाया हुआ आहार करने की परिपाटी है इसलि संभव है कि-जिस मुनि का पेटफाडकर रंकोने आहार निकाल वह मुनि दिगम्बर सम्प्रदाय का होना चाहिए ! क्यों कि-श्रावकों के घर पर आहार करने की रीत दिगम्बर मुनियों में प्रचलित है. और पेट फाड कर निकालने की शक्ति अस्थिएँ अवशेष वाले रंकों में कहां से आई ? और क्या राज्य का प्रबंध वहां नहीं था । इन बातों का कुछ भी विचार न कर कल्पित लिखडाला.

आगे रत्ननन्दी लिखते हैं-" श्रावकों के आग्रह से साधु वन से नगर में आकर रहने लगे, और श्रावक वर्ग भय वश रात्री भोजन बनाने लगे, मुनि वर्ग भी रात्री में आहार लाकर रखदेने लगे और प्रकाश में आहार करने लगे "

इस की समीक्षा यह है कि-दिनसे तो रात्री में भय अधिक

हुआ करता है और वन से शहर में भय अधिक होता है. अतः रत्ननन्दी की यह कल्पना गलत है. क्यों कि रंक जिनके आश्रय से वहां ठहरे थे ऐसे अन्य प्रजाजन भी तो वहां होंगे ? और उनकी रक्षाका भी तो राज्य प्रबंध जरूर होगा ? इस पर से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि--राज-प्रजा, श्रावक संघ के साथ २ मुनि संघ का भी निर्वाह और रक्षा होना संभव है. क्यों कि इसके सिवा वहाँ नागरिक कैसे रह सकते ? और रंकों को दान कौन देता होगा ?

एक-बनावटी-बात.

आगे रत्नन्दी लिखते हैं कि–" यशोभद्र सेठ के घर पर एक नग्न साधु आहार के लिए गये, क्षीण शरीरी क्षुधार्त साधुको देख-कर धनश्री सेठानी उन्हें राक्षस समझकर भयभीत होगई जिस से उस का गर्भ पात हो गया और नगर में हा, हा, कार मचगया, इसलिए श्रावकों ने मुनियोंको वस्त्र रखने का आग्रह किया तब से मुनि वस्त्र रखने लगे, धीरे धीरे शिथिल होते गये–कुमार्ग गामी बनते गये. "

रत्ननन्दी की उपरोक्त कल्पित कथा दिगम्बर नग्न साधु के लिए ही लांछना स्पद है क्यों कि–श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मुनि तो सदासे वस्त्र पहने हैं. परंतु अन्यन्य सेठानियोंका अन्यान्य नग्न साधु को देखने से, कभी कहीं गर्भपात होने का किसी ग्रंथ में उल्लेख है ? या वस्त्र धारण का असत्य कारण बतलाने को ही रत्ननन्दी ने यह बात कल्पित लिख डाली है ? यह कथा तो यह

बात सिद्ध करती है कि–नग्न रहने से कभी किसी स्त्री का गर्भ पात हो जाना संभव है इसलिये गृहस्थ के घर में नग्न मुनि को नहीं जाना चाहिये वरना गर्भ पातका दोष मुनि को लगना संभव है.

आगे रत्ननन्दी लिखते हैं कि–" बारा वर्ष बीत जाने पर विशाखाचार्य ने उत्तर की ओर आने को प्रयाण किया मार्ग में भद्रबाहु की समाधी स्थानपर पहुँचे चन्द्रगुप्त ने विशाखाचार्य को प्रणाम किया और वहाँसे विहार करते हुए उज्जयिनी को आये " यहाँ चरित्र का तीसरा परिच्छेद पूरा होता है.

चन्द्रगुप्तकाही अपरनाम विशाखाचार्य, हरिषेण कहते हैं और दिगम्बर पट्टावलियों में दुसरे भद्रबाहु के शिष्य विशाखाचार्य नाम के हुए बतलाते हैं अतः इस विरोध का क्या परिहार है ? और बारा वर्ष पूरे होते ही फिर से उज्जयिनी आने का क्या प्रयोजन आदि बातें विचारणीय अवश्य है.

परिच्छेद ४ था

चोथे परिच्छेद के प्रारंभ में रत्ननन्दी लिखते हैं कि– स्थूलाचार्य ने विशाखाचार्य को देखने के लिए मुनियों को भेजे, शिष्यों ने देखकर पीछे आकर सब वृत्तान्त कहा, तब वे सब विचार करने लगे कि–अब क्या करना ? स्थूलाचार्य ने कहा पीछा चारित्र लो ! यह बात अन्य किसी को पसंद नहीं हुई–और सब मुनि क्रुधित हो कर स्थूलाचार्य को डंडों से मारकर खड्डे में डाल देया. आर्तध्यान से मरकर स्थूलाचार्य व्यन्तर देवता हुए "

चारित्र छोडने वाला फिर से चारित्र ले सकता है परंतु चारित्र छोडाही नहीं उस को फिर से चारित्र लेनेका क्या प्रयोजन ? और तनिक सी बात परसे सब मुनियोंने मिलकर स्थूलाचार्य को मार डाला यह बात भी असंभव है. और क्या राज्य का प्रबंध नहीं था कि–जिससे मनुष्य हत्या करने वालों को दंड नहीं दिया गया ? और हत्यारे निर्दोष रहे ? आर्तध्यान में मरनेवाला नरक तिर्यंच योनी में जाता है और रत्ननन्दी लिखता है कि "आर्त-ध्यानसे मरकर स्थूलाचार्य व्यन्तर हुआ" यह कथन जैन सिद्धान्त से विरुद्ध है क्यों कि–"**सुभ भावेण हुंति वंतरिया**" अर्थात् शुभ भाव से मरकर व्यन्तर देवता होता है. अतः यह लिखना द्वेप से है.

आगे रत्ननन्दी लिखते हैं कि–" उस व्यन्तर ने घोर. उपद्रव किये इस से साधु भयभीत होकर क्षमा माँगने लगे, और गुरु के हड्डियों की पूजा करने लगे, तब शांति हुई. आज भी श्वेताम्बरों में हड्डियाँ पूजी जाती है " उपद्रवों से साधु कभी गभडाते नहीं और न कोई हड्डियाँ श्वेताम्बरों में पूजी जाती है, और न कोई इस बात को आधार या प्रमाण मिलता है. यह बात केवल द्वेप बुद्धि से लिखी गई है.

इस के आगे रत्ननन्दी लिखते हैं कि–" आठ अंगुल लम्बी, चार अंगुल चौडी लकडे की पट्टी बनाकर, उस पट्टी में गुरु की कल्पना कर पूजने लगे तब व्यन्तर ने उपद्रव बंध किया, उस दिन से उस मत को " अर्ध फालक " मत कहने लगे. "

रत्ननन्दी एक स्थान पर लिखते हैं–" गुरुकी हड्डियाँ

कल्लाणेवर णयरे, सत्तसद पंच उत्तरे जाए
यापणीय संघ भावो सिरि कलसाई सेवड़दो
(दर्शनसार)

अर्थात् कल्याण नगर में वि. सं. ७०५ में श्री कलश नाम के श्वेताम्बर से यापनीय संघ निकला. अब विचार का स्थान है कि–इन दोनों लेखकों में किस का कहना सत्य है! एक कथा में रानी चन्द्रलेखा ने वस्त्र भेज कर अपने गुरु जिनचन्द्र को वस्त्रधारी बना दिए तबसे श्वेताम्बर मत प्रचलित हुआ लिखा और उसी चन्द्रलेखा की पुत्री ने अपने गुरु को वस्त्र त्याग करा कर नग्न बना दिया तब से यापनीय संघ निकला लिखा है यह कैसा अजब ढंग है! इस कथा की असत्यता स्पष्ट प्रतीत होरही है, अस्तु. आगे वि. सं. १५२७ में लुम्पक मत की उत्पत्ति लिख कर रत्ननन्दी कहता है कि–"ऐसे अनेक मत जिनमत विरुद्ध प्रचलित हुए" धन्य है रत्ननन्दी के इतिहासिक ज्ञान को और धन्य है उस के अनुयायियों को!

आगे रत्ननन्दी भद्रबाहु चरित्र में लिखता है कि–

स्थविरादिव्रतिव्रात, प्राणपोषण चेतसः
ततः स्थविर कल्पस्थाः, प्रोच्यन्ते सूरिसत्तमैः ११८
साम्प्रतं कलिकालेऽस्मिन्हीन संहननत्वतः
स्थानीय नगरग्राम, जिनसद्मनिवासिनः ११९
(भ. च. पृ. ८२–८३)

अर्थात् इस भीषण कलिकाल में हीन संहनन वाले स्थविर

कल्पि साधु होने से वे लोग स्थानीय–नगर–ग्रामादि के जिनालय में रहते हैं.

यहां यह बात विचार करने योग्य है कि–यही बात शिवभूति को गुरुजी ने कही थी कि " भाई जिनकल्प विच्छेद होगया है अब निराश्रय रहनेका संहनन नहीं है इस लिए वस्त्र-पात्र स्थान आदि के आश्रय से यथा शक्ति संयम निर्वाह करना योग्य है, " इस बात को शिवभूति ने माना नहीं और नग्न–नूतन मत प्रचलित किया. और आज भी वर्तमान दिगंबर लेखक जो यह कहते हैं कि–शिवभूति ने नवीन क्या किया ? परंतु अन्त में तो रत्ननन्द्यादि को भी यह स्वीकार करलेना पडा और सारे भद्रबाहु चरित्र में उत्कृष्ट चारित्रका पींजण पींजा वह भी व्यर्थ गया और अन्त में लिखना पडा कि–हीन संहनन वश जिन मंदिर का आश्रय लेकर रहने वाले स्थविरकल्पि रहगये और जिनकल्पी नहीं रहे. यह पहले ही क्यों नही लिख दिया ? परंतु दुराग्रह इसी का नाम है.

भद्रबाहु चरित्र के अन्त में ग्रंथ समाप्ति करते हुए रत्ननन्दी लिखते हैं " श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर में महावीर स्वामी ने कहा वही मैंने यहां लिखा है " इस बात का खंडन हम ग्रंथारंभ में ही लिख आये हैं और यहां हम इतना फिर कह देते हैं कि–महावीर के नाम पर चढा देने पर भी काल्पित कथा सत्य नहीं हो सकती. शम् ।

तृतीय भाग समाप्त.
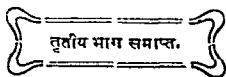
परिशिष्ट.

श्वे. म. स. दीग्दर्शन पृष्ट ७६–पंक्ति ५ पर.

स्वामी समन्तभद्र के रत्नकरंड श्रावकाचारकी आर्या इस प्रकार दी है "चेलोपसृष्ट मुनिरिव गृहीतदा याति यतिभावम्" इस का हमने यह अर्थ किया था कि–" वस्त्र उपवेष्टित मुनि की भांति गृहस्थ भी सामायिक में यति भाव को प्राप्त होजाता है इस से स्पष्ट है कि–वस्त्रों से उपवेष्टित भी मुनि होते हैं " हमारे इस अर्थ को असत्य कह कर पं अजितकुमारजीने इसका यह अर्थ जैन दर्शन पत्र में प्रकट किया है कि " कोई मनुष्य उनके आचरण के विरुद्ध कपडा डालकर उपसर्ग करें " मगर यह अर्थ किस व्याकरण–कोष के अनुसार किया गया है ? यह पंडितजी जाने परंतु उक्त अर्थ विद्वत्समाज को और स्वामी समन्तभद्र को कभी मान्य नहीं हो सकता ! क्यों कि– "चेल" (वस्त्र) "उप" (समीप) "सृष्ट" (शरीर पर वेष्टित करना) अर्थात् भिक्षा मांग कर लाया हुआ वस्त्र, अपने पास का वस्त्र मुनि अपने शरीर पर वेष्टित करें (ओढ लें) तद्वत् यह इस का शब्दार्थ होता है उप संज्ञक उपसर्गही यह बतला रहा है कि–अपने पास का वस्त्र, और अमरकोष नानार्थ वर्ग श्लो. ३९ पर "सृष्ट" शब्द का यह अर्थ किया है कि "सृष्टं निश्चिते बहुनि त्रिषु" एवं "सृज्" धातु को "क्त" प्रत्यय लगाने से सृष्ट शब्द बनता है जिस का संसर्ग, धन विभाग, वमनादि से संशुद्धि तथा मांगकर लाई गई भिक्षा आदि अर्थ होते हैं देखो शब्द कल्पद्रुम भाग ५ पृष्ट २०५ तथा प्राकृत शब्दमहार्णव

खंड ४ पृष्ट १०६७ पर. इस प्रकार व्याकरण-और कोषों से जो अर्थ होता है वह ऊपर बतला दिया गया है. एवं रत्नकरंड के टीका कार ने भी वैसा ही अर्थ किया है " चेलेनवस्त्रेण उपस्टष्टा—उपसर्ग वशात् वेष्टित सचाऽसौ मुनिश्च " अर्थात् " शीतादि उपद्रव से बचने के लिए जिस मुनि ने वेष्टित किया है अपने पास का वस्त्र उस मुनि की भांति " इस सरल अर्थ को छोड कर भाषा टीकाकार तथा उक्त पंडित जी मनमाना साम्प्रदायिक अर्थ कर मूल पाठ के आशय को बदलना चाहते हैं और दुसरी बात यह है कि–कोई मनुष्य, पत्थर, लाठी रस्सी आदि से तो उपसर्ग कर सकता है परंतु वस्त्र फैंक कर उपसर्ग कैसा कर सकता है ! यह पंडितजीही जाने !

इस आर्या पर से विशेष ध्यान देने योग्य एक बात यह है कि–सामायिकस्थ गृहस्थ सवस्त्र रहने पर भी यति भाव को प्राप्त हो जाता है तो फिर मुनि के लिए एकान्त वस्त्र निषेध होही कैसे सकता है ! क्यों कि–वस्त्रही यति भाव के लिए बाधक होता तो फिर श्रावक को भी " नग्न " बनकर सामायिक करने का आदेश दिया जाता ! किन्तु श्रावक तो वस्त्र सह रहकर सामायिक करते (उतने समय के लिए) यतिभाव को प्राप्त हो जाता है तो फिर पंचमहाव्रत धारी वस्त्र क्यों नहीं रख सकता ! अतः यह बात समन्त भद्रस्वामी की इस आर्या से स्पष्ट हो जाती है कि–यतित्व के लिए वस्त्र बाधक नहीं है और स्वामी समन्तभद्र को वस्त्रधारक जैन मुनि मान्य है. (श्वे. जैन आगरा अंक ४० ता. २७-९-३४ से उध्दृत.)

उपसंहार ।

(१) जैन धर्म यह आत्मा का अनादि धर्म है. इस काल चक्र में इस के आद्य प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव स्वामी हुये हैं. जिन्होंने लोक व्यवहार प्रचलित किया.

(२) जैन धर्म का दुसरा नाम अनेकान्त दर्शन या धर्म है. इस में किसी बात का एकान्त कथन नहीं हैं जो लोक मुनियों की एकान्त नग्न दशा मानते हैं वह जैन दर्शन के विरुद्ध है.

(३) वर्तमान दिगम्बर सम्प्रदाय प्रचलित है उसकी उत्पत्ति वि. सं. १३८ में शिवभूति मुनि और उत्तरा साध्वी से हुई है.

(४) श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय को आगम मान्य है और दिगंबर सम्प्रदाय को आचार्य प्रणीत आधुनिक ग्रंथ मान्य है.

(५) खारवेल के शिलालेख तथा मथुरा के शिलालेख कल्पसूत्र और नन्दी सूत्र की पट्टावली से मिलते हैं इसलिये प्राचीन शिलालेख जितने हैं वे श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की प्राचीनता सिद्ध करने वाले हैं.

(६) बौद्धों के पीटक ग्रंथ तथा गौशालक का आजीवक मत जैनागमों की प्राचीनता सिद्ध करने वाले हैं.

(७) केवली कवलाहार को नहीं मानने वाले व्यवहार शून्य है.

(८) केवली का शरीर सप्तधातु रहित मानना व्यवहार विरुद्ध हैं.

(९) समवसरणस्थ अर्हन्त मुकुट कुंडलादि से विभूषित दीखते हैं इसलिए जिन प्रतिमाकों मुकुट–कुंडलादि पहनाना योग्य है.

(१०) भावलिंग ही मुक्ति का कारण है, द्रव्यलिंग की ावश्यकता नहीं इसलिए एकान्त वस्त्र त्याग को मुक्ति का कारण ानना शास्त्र विरुद्ध है.

(११) स्त्री–पुरुष दोनों मुक्ति के समान अधिकारी हैं तः स्त्री को मोक्ष नहीं मानते वे स्त्रियों की उन्नति के विरोधी हैं.

(१२) श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि– केसी भी धर्म सम्प्रदाय का वेष धारण किया हुआ हो किन्तु भाव चारित्र उदय में आजाने से अन्यलिंगी तथा गृहस्थ भी मोक्ष जा सकता है. परंतु दिगम्बर सम्प्रदाय की यह संकुचित मान्यता है कि–नग्न जैन मुनि ही मोक्ष जा सकता है अन्य नहीं.

(१३) मुक्ति गमन के लिए परिग्रह बाधक नहीं है किन्तु मूर्च्छा बाधक है.

(१४) गर्भापहार देवकृत कार्य है इसलिए मनुष्य की बुद्धि के बाहर का यह कार्य है.

(१५) मनुष्य जिसे देख या सुनकर आश्चर्य में पडजाँय उसे अच्छेरा कहा जाता है ऐसे १० अच्छेरे इस अवसर्पिणी काल में हुवे हैं उन्हें असत्य कहना बुद्धिका प्रमाद है ।

(१६) सब धर्मों के साथ सहिष्णुता रखकर आत्मिक धर्म का चिन्तवन–मनन करना यह जैन धर्म का सार है. क्यों कि सभी धर्म जैन दर्शन के अंग प्रत्यंग हैं ।
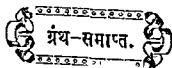
शुद्धि-पत्र.

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	—	पंक्ति
बाहिर	बाहिर	१	—	११
झगडासु	झगडालू	२	—	१
मन्दिः	मन्दिः	२	—	१०
संप्येपतः	संक्षेपतः	३	—	८
शुद्र	शुद्ध	५	—	१०
अहार	आहार	६–११	—	८–९
तययन्त्र	तत्रयत्र	,,	—	१२
मशिन	मशीन	,,	—	१९
सम्यक्त	सम्यक्त्व	९	—	३
शारिरीक	शारीरिक	१०	—	५
वुक्षकर	वृक्षकर	,,	—	१०
बोद्ध	बौद्ध	,,	—	११
स्वामि	स्वामी	,,	—	१६
कुर्कट	कुकुट	(११–१२–१६)		
व्याघ्री	व्याघ्रो	१२	—	९
सेन्धव	सैन्धव	१३	—	१
पशित	पिशित	,,	—	१६
वनास्पतियों	वनस्पतियों	१४	—	१२–१६
अस्ति	अस्थी	,,	—	१४
उसने	वह	,,	—	२५
कल्मद्रुम	कल्पद्रुम	१६	—	१३
होनार	होना	१८	—	१०
पुरुस	पुरुष	,,	—	१६
वेस	वेष	१९–२२–२७	—	३-१३-१९-१२
श्रोणिक	श्रेणिक	२०	—	१५
भोजना	भेजना	२१	—	२

घटाते	बैठाते	,,	—	१५
परीग्रह	परिग्रह	२२	—	१८
बने	बचने	२३	—	१०
अच्छादन	आच्छादन	,,	—	१२
भूलगया	भूलगया	२४	—	४
अन्ततर	अनन्तर	२५	—	१
अस्थियाँ	अस्थियाँ	२९	—	१८
पंधितजी	पंडितजी	३०	—	३
परीभोग	परिभोग	,,	—	८
बाह्म	बाह्य	,,	—	९
बांधने	बाँधने	,,	—	१७
चूलीका	चूलिका	३२	—	२
सनाज	समाज	,,	—	१७
प्रथक्	पृथक्	३३	—	१७
हिरालालजी	हीरालालजी	३४	—	१३
शर्ङ्गीग	शर्ङ्गिंग	३५	—	१३
स्तुरि	सूरि	३६	—	६
प्रकर	प्रकरण	,,	—	१२
विपरीहै	विपरीत है	,,	—	१६
भागभट्ट	वाग्भट्ट	३८	—	६
कनदो	कनडी	४८	—	१७
अनायारो	अनायारा	५०	—	२०
आम्नाय	आम्नाय	५२	—	८
यहा	यहाँ	५४	—	१८
सरदे	दूसरे	५७	—	१९
चन्द्रादी	देवचन्द्रादि	५८	—	५
भद्रबाहु	भद्रबाहु	५९	—	३
जिनचन्द्र	जिनचन्द्र	,,	—	४
मग्रबाहु	भद्रबाहु	,,	—	१७

पुछे	पूछे	"	—	१९
अर्हतली	अर्हदबली	६०	—	१
ऐतिहास	इतिहास	"	—	५
डेकन	डेक्कन	"	—	८
म्लेछों	म्लेच्छों	६१	—	२२
प्रथक्	पृथक्	६२	—	१६
प्यऽभयदः	प्यऽभयदः	६४	—	१५
प्यखिलेशः	प्यखिलेश	"	—	१६
दुर्गा	दुर्गा	"	—	२२
कुच्छ	कच्छ	६६	—	२
काव्य	कार्य	"	—	१९
कुर्वेति	कुर्वंति	६८	—	६
रक्षणार्थं	रक्षणार्थं	"	—	१२
वगो	वर्गो	७३	—	३
मर्त	मत	७५	—	१७
सांदिएँ	सादिवेँ	८४	—	२
न्याधिक	न्यूनाधिक	९३	—	२३
एकचित्त	एकत्रित	"	—	१३
पंडीतजी	पंडितजी	९६	—	१५
प्रही	गृही	१०६	—	१३
पट्टोवलियाँ	पट्टावलियाँ	१०९	—	१२
भोजन	भोजनवर्ज्य	११५	—	१५
चहाते	चाहते	१२२	—	१३
बद्रबाहु	भद्रबाहु	१२५	—	५
पद्मघर	पद्मधर	१२७	—	३
ग्रंथा	ग्रंथों	"	—	१३
आवेग	आवेगा	१२९	—	१८
मिथ्यात्व	मिथ्यात्व	१३०	—	१७
पालन	पालन करने	१३३	—	३
वदताव्याघात	वदुताव्याघात	१४२	—	२

(अर्हम्.)

अग्रिम अर्थ सहायता देनेवाले सज्जनों की शुभ नामावली.

संख्या	नाम.
५०	श्वेताम्बर जैन संघ-अमरावती
५०	,, ,, -आकोला
२५	,, ,, ,,-मुलतान
२५	सेठ श्री त्रिभोवनदास केशवजी-फोर्ट-बंबई

बालापुर

२५	सेठ लालचंदजी खुशालचंदजी
२५	,, सुखलालजी हीरालालजी
११	,, सोहनलालजी पोपटलालजी

वरोरा [जि. चांदा सी. पी.]

११	सेठ सुगनचंदजी नन्दलालजी चोरडिया
७	,, लक्ष्मीचंदजी मिलापचंदजी सीपानी
५	,, मांगीलालजी मदनलालजी चोरडिया
५	,, रतनचंदजी हजारीमलजी कोचर
५	,, सुगनचंदजी रतनचंदजी वेद
५	,, गणेशमलजी गुलाबचंदजी गोठी (जैतान)
५	,, हर्षचंदजी चुन्नीलालजी फलोदिया
४	,, तुलसीरामजी भैरूँदानजी कोचर

४ ,, बगतावरमलजी हेमराजजी संचेती

२ ,, घेवरचंदजी मेघराजजी मोदी

हींगनघाट [सी. पी. जि. वर्धा]

२१ सेठ हीराचंदजी अमोलखचंदजी कोठारी

११ ,, गणेशमलजी सरदारमलजी काँसवा

९ ,, हीराचंदजी बागमलजी कोठारी

७ ,, रायमलजी मगनमलजी कोचर

७ ,, लालचंदजी हीरालालजी डागा

७ ,, हेमराजजी जवेरीमलजी-गांधी

५ ,, रेखचंदजी कालूरामजी बाँठिया

५ ,, हस्तीमलजी कनकमलजी कोठारी

५ ,, कुंदनमलजी सोभाचंदजी-कटारिया

५ ,, आलमचंदजी सोभाचंदजी-लोढा

५ ,, फूलचंदजी अमोलखचंदजी चोरडिया

५ ,, मन्नालालजी फूलचंदजी वेद

नोट--श्रीयुत् चुन्नीलालजी फलोदिया के श्रमसे वरोरा और हींगनघाट से अर्थ सहायता प्राप्त हुई एतदर्थ धन्यवाद।

१ श्रीपार्श्वनाथ जैन पुस्तकालय-पोस्ट-सूरतगढ जि. बीकानेर-स्टेट

१ मोतीचंदजी नखत नं. ११८ डी. धर्मतल्ला-स्ट्रीट-कलकत्ता

१ धिया-लक्ष्मीचंदजी पोस्ट-प्रतापगढ-स्टेट (राजपूताना)

१ माणकचंदजी रामपुरिया पोस्ट-खुजनेर. जि. नरसिंहगड-स्टेट

अर्हम्,

श्रीमान् बालचन्द्राचार्यजी लिखित पुस्तकें

१ जगत्कर्तृत्व-मीमांसा
२ निराकरण-निर्णयम्
३ श्री तीर्थक्षेत्र-कुलपाक
४ व्याख्यान परिषद्-विचार
५ सुबोध कुसुम-मालिका
६ मानव-कर्त्तव्य
७ समालोचना जैनतत्व प्रकाश
८ धूकामय-विचार (वैद्यक)
९ कृत्रिम दीक्षा प्रवृत्ति केम अटकावी शकाय?
१० श्वेताम्बर मत समीक्षा दिग्दर्शन

नॉट--उपरोक्त पुस्तकों मेंसे जो कुछ अवशेष बची हैं उन को पाठक मँगवाकर लाभ उठा सकते हैं.

पुस्तकें मिलनेका पताः—

मैनेजर—श्री वर्द्धमान जैन आश्रम,

पोष्ट खामगांव (बेरार).

अर्हम्.

श्री वर्द्धमान जैन औषधालय

खामगांव [बेरार]

यह दातव्य औषधालय है इस में गरीब और अमीर सब को मुफ्त दवा दी जाती है. मूल्य नहीं लिया जाता और बाहर से मँगवानें वालों से भी पोष्टेज-पारसल खर्च लेकर दवा भेज दी जाती है. परंतु रोगी का पूरा वृत्तान्त लिखकर भेज देने पर ७।७ दिनकी दवा भेज दी जाती है और कोई अपने यहाँपर बना लेना चाहे उसे विधिभी लिखकर भेज दी जाती है. अथवा हमारे यहाँ से दवा बनवा कर मँगवाना चाहे तो लागतमात्र खर्च भेज कर भी मंगवा सकता है.

" सर्पदंश की दवा "—मुफ्त भेजी जाती है इस दवा से अनेकों के प्राण बचे हैं पांडू-पीलिया एनिमिक की दवा शर्तिया लाभ पहूँचाती है।

वीर्य विकार,-धातु क्षीणता, क्षय खाँसी दम की दवा भी अच्छा लाभ देती है यहाँ पर सब रोगों का इलाज होता है. पत्र व्यवहार करने वाले सज्जनों ने नीचे लिखे पते पर पत्र भेजना चाहिये

पता—

श्री वर्द्धमान जैन औषधालय,

खामगांव (बेरार).